खंड

3

भारतीय अनुवाद सिद्धांत

इकाई 9

प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांत 109

इकाई 10

बौद्ध अनुवाद सिद्धांत 120

इकाई 11

आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धान्त 130

खंड परिचय

खण्ड 3 भारतीय अनुवाद सिद्धांत

एम.ए. अनुवाद अध्ययन के पाठ्यक्रम 'अनुवाद सिद्धांत' (एम.टी.टी.10) के इस तीसरे खण्ड **'भारतीय अनुवाद सिद्धांत'** में भारतीय अनुवाद सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत खण्ड में तीन इकाईयां शामिल हैं। पाठ्यक्रम की पूरी योजना के क्रम में ये इकाईयां 9, 10, तथा 11 हैं। इकाई 9 **'प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांत'** के अन्तर्गत प्राचीन भारतीय अनुवादों में अन्तः भाषिक, अन्तर भाषिक तथा अन्तरप्रतीकात्मक अनुवाद शामिल हैं। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय अनवुाद शब्दानुवाद; भावानुवाद तथा छायानुवाद की कोटियों में देख सकते हैं। जहां तक सिद्धांतों एवं रणनीतियों का प्रश्न है तो अर्थ संप्रेषण, व्याख्या तथा समतुल्यता के सिद्धांतों का प्रयोग देखने को मिलता है।

इकाई 10 **'बौद्ध अनुवाद सिद्धांत'** बौद्ध अनुवाद चिन्तन के विषय में विचार करती है। बौद्ध दर्शन के प्रचार-प्रसार एवं उसके विकास के साथ-साथ अनुवाद की आवश्यकता भी बढ़ी और उसका महत्त्व भी चीन तथा तिब्बत में हुए अनुवादों की तीन अवस्थाओं की चर्चा के साथ-साथ इसमें अनुवाद के लिए अपनाई गई रणनीतियों तथा सिद्धांतों का भी वर्णन किया गया है। इकाई 11 **'आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धांत'** भारतीय अनुवाद चिन्तन की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए पश्चिमी तथा भारतीय अनुवाद सिद्धांत विवेचन के स्वरूप और अन्तर पर प्रकाश डालती है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में प्रमुख आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धांतकारों-विचारकों (ए.के. रामानुजन, सुजित मुखर्जी, गायत्री चक्रवर्ती स्वीवाक, तेजस्विनी निरेजना तथा हरीश त्रिवेदी) के अनुवाद सम्बन्धी विवेचन को केन्द्र में रखते हुए आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धांतों का परिचय देने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख अनुवाद चिन्तकों तथा उनके सिद्धांतों का परिचय इकाई में उपलब्ध है।

इकाई 9 प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 प्राचीन भारतीय अनुवादः परंपरा और प्रयोजन

9.3 प्राचीन भारतीय अनुवाद क्षेत्र

- 9.3.1 अंतः भाषिक अनुवाद
- 9.3.2 अंतरभाषिक अनुवाद
- 9.3.3 अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद

9.4 प्राचीन भारतीय अनुवादों के प्रकार

- 9.4.1 शब्दानुवाद
- 9.4.2 भावानुवाद
- 9.4.3 छायानुवाद

9.5 प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांत

- 9.5.1 अर्थ संप्रेषण का सिद्धांत
- 9.5.2 व्याख्या का सिद्धांत
- 9.5.3 समतुल्यता का सिद्धांत

9.6 सारांश

9.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप प्राचीन भारतीय अनुवाद की परंपरा एवं प्रयोजन को समझ सकेंगे।
- अनुवाद सिद्धांत के स्वरूप एवं प्रकार को बता सकेंगे।
- प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांत को समझ सकेंगे एवं उसके विविध आयामों का उल्लेख कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

विभिन्न भाषा-भाषी जनसमूह के बीच अंतः संप्रेषण की प्रक्रिया के रूप में अनादिकाल से अनुवाद का विशिष्ट योगदान रहा है। भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में, जहां हर कोस पर भाषा में कुछ परिवर्तन आ जाता है, अनुवाद का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। यद्यपि यूरोपीय देशों में प्राचीनकाल से ही अनुवाद के कुछ सामान्य सिद्धांतों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, किन्तु भारत में अनुवाद सिद्धांत के निर्माण की प्रक्रिया कुछ भिन्न है। प्राचीन काल में भारत में संभवतः अनुवाद को मौलिक लेखन से अभिन्न या समकक्ष मान लेने के कारण अनुवाद के सिद्धांतों का विशेष विकास नहीं हो पाया। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्राचीन समय में भारत में अनुवाद कार्य हुआ ही नहीं। लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद कार्य पर्याप्त परिमाण में हो रहा था, किन्तु अनुवाद सिद्धांत के चिंतन की कोई परंपरा इस युग में

दिखाई नहीं दे रही थी। आधुनिक युग में जिस प्रकार अनुवाद कार्य तथा अनुवाद सिद्धांत के निर्माण का कार्य ज़ोर ले रहा है, वह रूप हमें प्राचीन काल में नहीं दिखाई पड़ता और चूंकि अनुवाद सिद्धांत का कोई रूप हमें परंपरा से प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिए हम कुछ विद्वानों की कृतियों तथा अनुवाद कार्य को केन्द्र में रखकर ही प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांतों को ढूंढने का प्रयास करेंगे।

9.2 प्राचीन भारतीय अनुवादः परंपरा और प्रयोजन

प्राचीन भारतीय अनुवाद की परंपरा की शुरूआत कहां से मानी जाए यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यों तो वैदिक संहिताओं को विश्व-पुस्तकालय की प्राचीनतम रचना माना गया है तथा उनमें स्थान और जाति के भेद से मनुष्यों में भाषा भेद का उल्लेख मिलता है।

जनं बिभ्रति बहुध विवाचसं नाना धर्माणं

- अथर्ववेद 12.1.45

परस्पर संपर्क होने पर, चाहे वह विजयाकांक्षा से प्रेरित युद्ध के प्रसंग में हो, या संपत्ति मूलक प्रसंग में हो, विभिन्न जातियों के मनुष्यों को अपनी भाषा से भिन्न भाषा प्राचीन काल में भी जाननी पड़ती होगी। इसलिए अनुवाद का आरंभ प्राचीनकाल से ही मानना चाहिए।

सम्राट अशोक की प्रज्ञप्तियों में स्थानों की भिन्नता के अनुसार कुछ भाषा-भेद पाया जाता है। धर्म, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि शास्त्रों के संस्कृत ग्रंथों के चीनी, तिब्बती तथा अरबी भाषाओं में हुए अनुवाद प्रसिद्ध हैं। बताया जाता है कि नागार्जुन ने सैंकड़ों वैज्ञानिक संस्कृत ग्रंथों की चीनी और तिब्बती भाषाओं में अनुवाद किया था। संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों के अनुवाद अरबी और यूनानी में भी बड़े पैमाने पर हुए। यहां की गणित, ज्योतिष और आयुर्वेद की पुस्तकें यूनानी भाषा में अनूदित की गई और इस प्रकार वे आधुनिक यूरोप को उपलब्ध हो सकीं।

साहित्यिक अनुवादों की परंपरा भी प्राचीन काल से ही चली आती है। बौद्धकाल में संस्कृत के धर्म, नीति आदि के अनेक श्लोक पालि में अनूदित किए गए। 'गाथा सप्तशती' मूलतः प्राकृत रचना थी, जिसका संस्कृत में अनुवाद हुआ। संस्कृत और पालि की कुछ समानार्थक रचनाएं स्पष्टतः अनुवाद के उदाहरण हैं-

यो हिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।

आत्मनः सुखमिच्छन् स प्रेत्य नैव सुखी भवेत्।।

- महाभारत

सुखकामानि भूतानि यो दंडेन विहिंसति।

अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं।।

- धम्मपद, 10.3

इस प्रकार संस्कृत के धर्मग्रंथों और साहित्यिक रचनाओं का भारत की आधुनिक भाषाओं में अनुवाद बड़े पैमाने पर होता रहा है। हिंदी में भी वेदों, पुराणों, काव्यों तथा नाटकों के अनुवाद भी बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं। जैन साहित्य में भी अनेक अनूदित ग्रंथ मिल जाते हैं। यदि यह कहा जाए कि जैन साहित्य में अनूदित ग्रंथ अधिक हैं और मौलिक कम तो कोई अत्युक्ति न होगी। पूर्ववर्ती कवियों के ग्रंथों और छंदों के उद्धरणों से ही इस साहित्य की अभिवृद्धि हुई है। सिद्ध कवियों की कृतियों का अनुवाद 'भोटिया' में हुआ। संस्कृत के 'विवेकमार्तंड' तथा 'शक्ति संगम तंत्रा' के आधार पर अनेक ग्रंथों का निर्माण किया गया। चारणकाल में 'भुवाल' कवित ने दोहा-चौपाई में भगवद्गीता का भी अनुवाद किया।

'पंचतंत्र' का अनुवाद पहलवी भाषा में हकीम बुर्जोई ने खुसरो नौशेरवाँ (531-579ई.) के शासनकाल में किया। इसके बाद अरबी भाषा में इसका अनुवाद अब्दुल्ला मोफ्रका ने 'कलिलह दिमनह करटक दमनक' नाम से किया अनुवाद की दृष्टि से पंचतंत्र को प्रथम स्थान प्राप्त है। भारत में भी पंचतंत्र का अनुवाद लगभग सभी साहित्यिक भाषाओं में हुआ है।

मुगलकाल में बादशाह अकबर ने प्राचीन ग्रंथों के अरबी और फारसी में अनुवाद के लिए एक स्वतंत्र विभाग स्थापित कराया, जिसमें रामायण, महाभारत, गीता आदि के अनुवाद फारसी में कराए गए। विभिन्न मुगल सम्राटों ने अनुवाद को अपना संरक्षण प्रदान किया। शाहजहां के ज्येष्ठपुत्र शहजादा दाराशिकोह ने एक महायज्ञ के रूप में 52 उपनिषदों का अनुवाद फारसी में किया। उपनिषदों के अतिरिक्त दाराशिकोह ने गीता और योगवशिष्ट का भी फारसी में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग में लगभग संपूर्ण वैदिक साहित्य (वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद) पुराण, महाभारत, रामायण, प्रबंधकाव्य, गद्यकाव्य, नाट्य साहित्य, काव्यशास्त्रीय ग्रंथ, स्मृतिग्रंथ, चिकित्सा, विधि आदि से संबंधित ग्रंथों का भारतीय भाषाओं जैसे तमिल, तेलगु, मराठी आदि के साथ ही अंग्रेजी, फ्रैंच, जर्मन, ग्रीक, फारसी, डेनिस आदि भाषाओं में हुआ। हिन्दी में अनुवाद की व्यवस्थित परंपरा सोलहवीं शताब्दी से मिलती है। मध्यकाल में प्रबोध चंद्रोदय का जसवंत सिंह, ब्रजवासीदास, नानकदास, घोंकल मिश्र, सोमनाथ, गुलाबसिंह ने अनुवाद किया तथा भाषा हनुमन्नाटक का हिरदेराम ने रामगीत नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया। अठारहवीं शताब्दी तक प्राचीन साहित्य का अनुवाद होता रहा। अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से जब खड़ी बोली का उदय हुआ तो हिंदी में अनुवाद कार्य में एक क्रान्ति सी आ गई। लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का अनुवाद हिंदी में किया जाने लगा और अंग्रेजी ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद की झड़ी सी लग गई क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग उदित हो चुका था।

प्राचीन भारतीय अनुवाद का प्रयोजन

प्राचीन भारतीय अनुवादकों का प्रयोजन क्या था? अथवा उन्हें अनुवाद की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? इसका कारण यह हो सकता है यशसिद्धि, धनप्राप्ति, मंगल की भावना आदि। इनमें से हमें धनप्राप्ति की कामना को छोड़ना पड़ेगा क्योंकि अनुवादकों का मूल उद्देश्य अपनी जनता को ज्ञान-विज्ञान, साहित्य आदि की प्रवृत्तियों से परिचित कराना था, साथ ही इससे उन्हें यश और कीर्ति की प्राप्ति होती। धन प्राप्ति प्रयोजन के रूप में गौण हो सकता है किन्तु महत्त्वपूर्ण नहीं। ये प्राचीन अनुवादक विविध भाषाओं की रचनाओं से अपने पाठकों का परिचय करा उन्हें ज्ञान का एक नवीन उन्मेष प्रदान कर रहे थे।

9.3 प्राचीन भारतीय अनुवाद क्षेत्र

प्राचीन भारतीय अनुवादकों के अनुवाद सिद्धांत का अध्ययन करने से पूर्व हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि अनुवाद सिद्धांत का कोई निश्चित रूप हमें परंपरा से प्राप्त नहीं हुआ है, अतः हम कुछ विद्वानों की कृतियों तथा अनुवाद कार्य को केन्द्र में रखकर प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांतों को ढूंढने का प्रयास करेंगे। हम जानते हैं कि अनुवाद का स्वरूप और क्षेत्र व्यापक हैं। इसमें स्रोत भाषा के मूल पाठक के भाषिक या बोधात्मक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य से व्युत्पन्न लक्षणापरक और व्यंजनापरक अर्थ, विषयवस्तु तथा सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ, शैली प्रयुक्ति की विशिष्टता को यथासंभव सुरक्षित रखते हुए उसका लक्ष्य भाषा में स्वाभाविक और निकटतम समतुल्यता के आधार पर पुनः सृजन किया जाता है। यही अनुवाद के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आयाम हैं। यही आयाम प्राचीन भारतीय अनुवादकों के अनुवाद कार्य पर भी लागू होते हैं। उन्होंने न केवल स्रोतभाषा का स्वाभाविक और निकटतम समतुल्यता के आधार पर पुनः सृजन किया वरन् नयी अनूदित कृति को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि वह सर्वथा मौलिक कृति लगने लगी। इसके अतिरिक्त उसके कथ्य और संप्रेक्षण में भी उन्होंने आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया और उसे एक नए मौलिक ग्रंथ की भांति प्रस्तुत किया।

अनुवाद सिद्धांत के अनुसार अगर प्राच्य अनुवादकों के अनुवाद क्षेत्र को देखा जाए तो दो संदर्भों में प्राप्त होते हैं। 1. व्यापक संदर्भ, 2. सीमित संदर्भ। व्यापक संदर्भ में अनुवाद को तीन रूपों में देखा जा सकता हैः-

(क) अंतः भाषिक अनुवाद

(ख) अंतरभाषिक अनुवाद

(ग) अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद

9.3.1 अंतः भाषिक अनुवाद

किसी एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा व्यक्त अर्थ का उसी भाषा की अन्य प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण ही अंतः भाषिक अनुवाद है। इसमें एक ही भाषा के भीतर एक ही कथ्य को उसी भाषा की अन्य शैली, विधा बोली आदि में व्यक्त किया गया है। संस्कृत में किसी भी कृति का जो भाष्य या टीका होती थी वह एक प्रकार का अंतःभाषिक अनुवाद ही है। इसे अन्वयांतर भी कहते हैं। किसी एक भाषा के पद्य रूप का गद्य में, नाटक का कहानी में, भाषा की एक बोली का दूसरी बोली जैसे हिंदी की ब्रजभाषा बोली के पाठ का अवधी, भोजपुरी, खड़ीबोली में किए गए रूपांतरण अंतः भाषिक अनुवाद के रूप हैं। उदाहरण के लिए सायणाचार्य, यास्क, पतंजलि आदि अनेक विद्वानों ने वेदों, निरूक्तों, योगादि पर भाष्य तथा परवर्ती अनेक विद्वानों ने टीकाएं लिखीं। इसके अतिरिक्त कवि गुलाबसिंह ने संस्कृत नाटक बोध-चंद्रोदय का अनुवाद कर ब्रजभाषा में प्रबोधचंद्रोदय नामक पद्य कथा का सृजन किया। इस प्रकार सायणाचार्य, पतंजलि, शंकराचार्य, मल्लिनाथ, कवि आचार्य सोमनाथ आदि की कृतियां अंतः भाषिक अनुवाद के उदाहरण हैं। अंतः भाषिक अनुवाद के एक-दो उदाहरण देखिए। रहीम के काव्य पर अपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का भी प्रभाव रहा है। रहीम ने उनकी रचनाओं को अपनी मार्मिक अनुभूति द्वारा संवेद्य बना दिया है। उदाहरण के तौर पर ब्रजभाषा में कबीर और रहीम के निम्नलिखित दोहे देखे जा सकते हैं। जिसमें अंतःभाषिक अनुवाद की छटा दिखाई पड़ती है-

(1) जालौ इहै बड़ापना, ज्यूं सरलै पेड़ खजूरि।
पंथी छांह न बीसवै, फल लागैं ते दूरि।।; कबीर
होय न जाकी छांह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढिहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर।। (रहीम रत्नावली 24/270)

(2) जो बिभूति साधुन तजी, तेहि विभूति लपटाय।
जौन बमन करि डारिया, स्वान स्वाद सों खाय।। (कबीर)
जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात।। (रहीम रत्नावली 3/33)

9.3.2 अंतरभाषिक अनुवाद

यह एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था के अर्थ का दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था द्वारा अंतरण है। सीमित संदर्भ में स्रोतभाषा और लक्ष्य भाषा दोनों भाषाओं के बीच होने वाला अनुवाद वास्तव में अंतरभाषिक अनुवाद अथवा भाषांतर ही है। इस अनुवाद में पाठधर्मी और प्रभावधर्मी अनुवाद के मुख्य रूप से दो रूप होते हैं। पाठधर्मी अनुवाद में अनूदित पाठ की संरचना और बुनावट यथासंभव मूल पाठ के अनुरूप होती है। इसमें अनुवादक को पाठ से बाहर जाने की छूट नहीं होती। प्रभावधर्मी अनुवाद में स्रोतभाषा का मूल पाठ उसी भाषा के पाठक को जिस प्रकार प्रभावित करता है, उसका अनूदित पाठ लक्ष्य भाषा के पाठक को उसी प्रकार प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य को किसी अन्य भाषा में प्रस्तुत अर्थात् अनुवाद करने का अधिक प्रचलन नहीं रहा। कदाचित इसकी आवश्यकता नहीं समझी गई थी। किन्तु काव्यशास्त्रीय तथा नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में गाहा सतसई, वड्डकहा, कर्पूरमंजरी आदि प्राकृत ग्रंथों में संग्रहीत अनेक स्थलों का संस्कृत अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त नाटकों में पुरुष पात्रों का संवाद संस्कृत में होता था, किन्तु स्त्रियों तथा समाज के निम्नवर्ग के पात्र प्राकृत में बोलते थे। ऐसे प्राकृत संवादों का संस्कृतपाठ भी साथ-साथ दिया जाता था जिसे 'छाया' कहा जाता था। यह एक प्रकार का अंतरभाषिक अनुवाद ही था। प्राकृत भाषा के अनेक ग्रंथों में अंतरभाषिक अनुवाद हुए हैं। एक तरफ कुछ पाठधर्मी अनुवाद थे जिसमें अनुवादक को मूल पाठ से बाहर जाने की बिल्कुल छूट न थी तो दूसरी तरफ प्रभावधर्मी अनुवाद भी थे जिसमें पाठक स्रोत भाषा के पाठक की भांति प्रभाव एवं कथ्य को महसूस कर सकता था। जैसे गुणाढ्य की प्राकृत में लिखी बड्डकहा (बृहत्कथा) के तीन रूपांतर मिलते हैं; 1. बुद्ध स्वामी की बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह; 2. क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा मंजरी और 3. सोमदेव का कथा-सरित्सागर। इनमें से पहले दो पाठधर्मी अनुवाद हैं और अंतिम

प्रभावधर्मी अनुवाद।

इनके अतिरिक्त 'बाल्मीकि रामायण' तथा 'व्यास महाभारत' का तमिल में क्रमशः कंब रामायण तथा विल्लिपुत्तरार का महाभारतम् आदि अंतरभाषिक अनुवाद के उदाहरण हैं। 1656 में दाराशिकोह द्वारा उपनिषदों, का फारसी अनुवाद सिर्रे अकबर के नाम से करवाया गया था। दण्डी ने काव्यादर्श नामक लक्षण ग्रंथ लिखा तथा स्वयं ही इसका तमिल अनुवाद दंडियलंकारम' नाम से किया।

वास्तव में अंतर भाषिक अनुवाद को ही वास्तविक अनुवाद की संज्ञा दी जाती है। इसमें स्रोत भाषा के पाठ का लक्ष्य भाषा में समतुल्यता के आधार पर इस प्रकार अंतरण होता है कि मूल पाठ का संप्रेषणीय कथ्य अनूदित पाठ में प्रतिस्थापित हो जाए। प्राचीन भारतीय अनुवादकों ने विशेष तौर पर अंतरभाषिक अनुवाद में अपनी विशिष्ट क्षमता का परिचय दिया है। उन्होंने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि अनूदित पाठ मूल पाठ के अनुरूप ही हो। उदाहरण के लिए देखिए-

गंग अकबर दरबार के प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने ब्रजभाषा के कुछ कवियों के माध्यम से संस्कृत भाषा के श्लोकों का शब्दानुवाद अथवा भावानुवाद प्रस्तुत किया है। जिसमें मूल पाठ का संप्रेषणीय कथ्य अनूदित पाठ में प्रतिस्थापित हो गया है। जैसे भर्तृहरि ने अपने एक पद्य में कहा है कि अग्नि को जल से, सूर्य की धूप को छाते से, हाथी को अंकुश से, गाय और गधे को डंडे से, रोग को औषधि से, विष को अनेक मंत्रों के प्रयोग से रोका जा सकता है। इस प्रकार शास्त्र में सबकी औषधि है परन्तु मूर्ख की औषधि नहीं है-

भर्तृहरि-शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रोण सूर्यातपो

नागेन्द्रो निशिताधकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ

व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधर्मत्राप्रयोगैर्विषं

सर्वस्यौषध्मस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषध्म्।।

गंग ने उपरोक्त श्लोक ब्रज भाषा में निम्नलिखित कवित्त के माध्यम से अंतरभाषिक अनुवाद प्रस्तुत किया है-

गंग- पावक को जलबुंद निवास, सूरजताप को छत्रा कियो है

व्याधि को वेद, तुरंग को चाबुक, चौपग को वृख-दंड दियो है

हस्ति महामद को किय अंकुस, भूत पिसाच को मंत्र कियो है।

औषद है सबको सुखकारि, स्वभाव को औषद नाहिं कियो है।

9.3.3 अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद

इस अनुवाद में एक भाषिक प्रतीक होता है और दूसरा भाषेतर प्रतीक। हम जानते हैं कि चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि में भी भावों और विचारों की अभिव्यक्ति होती है। इनमें भाषिक ध्वनियों का प्रयोग नहीं होता है। इसलिए ये सभी भाषेतर प्रतीक हैं। कहानी, कविता, नाटक आदि की कथावस्तु का दृश्यांकन चित्र अथवा नृत्य से भी हो सकता है। चूंकि प्राचीनकाल में नृत्य और नाटक मनोरंजन के सामाजिक आधार थे तथा अनेक कृतियों और रचनाओं को नृत्य तथा नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता था अतः इस काल में अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद काफी मात्रा में हुए होंगे। किन्तु इनकी कोई निश्चित परंपरा हमें आज उपलब्ध नहीं है। फिर भी प्रतीकात्मक अनुवाद के उदाहरण महाभारत में शकुंतला की कथा, ब्राह्मणों में उर्वशी-पुरूरवा की कथा आदि के नाट्य रूपांतरों में मिलते हैं।

9.4 प्राचीन भारतीय अनुवादों के प्रकार

प्राचीन भारतीय अनुवादकों के अनूदित कृतियों को अनुवाद के प्रकारों के आधार पर भी तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। यद्यपि उन्होंने अनुवाद किन्हीं सिद्धांतों को ध्यान में रखकर नहीं किया है किन्तु अनुवाद प्रक्रिया में उन्होंने अनायास रूप में जहां जिसकी आवश्यकता थी, उसके अनुसार कथ्य का कहीं शब्दानुवाद किया है, तो कहीं भावानुवाद

तो कहीं छायानुवाद तो कहीं रूपांतरण। अनुवाद की इन्हीं कोटियों को ध्यान में रखकर हम उन अनुवादकों के अनुवाद कर्म का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

9.4.1 शब्दानुवाद

इसमें वाक्य संरचना को ध्यान में रखकर अनुवाद किया जाता है। इसमें शब्द-क्रम नहीं, वाक्य-विन्यास केन्द्र बिन्दु होता है और यह शब्द प्रतिशब्द अनुवाद से भिन्न होता है। और इसी वाक्य-विन्यास के अनुसार मूलपाठ का यथासाध्य अनुगमन किया जाता है। एक भाषा के भाव या दूसरी भाषा में रूपांतरण करते हुए प्रत्येक शब्द, पदबंध उपवाक्य, वाक्य आदि के महत्व पर ध्यान दिया जाता है। इसलिए मूल पाठ के अनुसार अभिव्यक्ति और कथ्य दोनों के बीच संबंध स्थापित किया जाता है, किन्तु इसमें शब्द या वाक्य की उपेक्षा नहीं की जाती। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय गणित, ज्योतिष तथा आयुर्वेद, दर्शन आदि में शाब्दिक अनुवाद दृष्टिगोचर होता है। तुलसीदास के राम चरित मानस में शाब्दिक अनुवाद का एक उदाहरण द्रष्टव्य है

आनंदरामायण के अयोध्याकांड में निम्न पंक्तियों का अनुवाद तुलसीदास ने शब्दानुवाद के रूप में दिया है-

सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमंदिरे।

भक्तिज्ञान विराजश्च राजन्ते देहिनो यथा।

रामचरितमानस-

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।

भक्ति ज्ञान वैराइ जनु सोहत धरे सरीर।

यहां तुलसीदास ने आनंद रामायण की उक्ति को ज्यों का त्यों रख दिया है। सीता के लिए 'सीय' अनुज के लिए 'अनुज', रामो के लिए 'प्रभु', राजते के लिए 'राजत', पर्णमंदिरे के लिए 'परन कुटीर' भक्तिज्ञान के लिए 'भक्ति ज्ञान', विराग के लिए 'वैराग्य', राजन्ते के लिए 'सोहत', देहिनो के लिए 'सरीर' और यथा के लिए 'जनु' शब्द दिया है।

9.4.2 भावानुवाद

यह एक प्रकार का कोटिमुक्त अनुवाद है। इसमें मूल पाठ के शब्द चयन, वाक्य विन्यास आदि पर ध्यान न देकर भावार्थ को पकड़ने का प्रयास रहता है। वास्तव में भावानुवाद 'सेंस फॉर सेंस' अनुवाद है जिसमें कभी अनुच्छेद का, कभी समूचे वाक्य का, कभी उपवाक्य का, कभी शब्द का तो कभी संपूर्ण पाठ का अनुवाद होता है। इसमें लक्ष्य भाषा के अपने शब्द संस्कार, वाक्य-विन्यास, मुहावरा सौष्ठव आदि की योजना अधिक होती है। इस प्रकार का अनुवाद मूलपाठ का यंत्रवत अनुसरण नहीं करता, कभी कभी तो यह मूलपाठ से भी दूर हो जाता है। इससे प्रायः मूल पाठ का साक्षात रसास्वादन नहीं हो पाता। इसकी अभिव्यक्ति इतनी भिन्न हो जाती है कि उसमें मौलिक रचना जैसा सहज प्रवाह उत्पन्न हो जाता है और व्यक्ति को मूल पाठ की झलक तक प्राप्त नहीं होती। किन्तु यदि मूल सामग्री में लक्ष्य भाव अन्तर्निहित हो तो भावानुवाद की विशिष्ट भूमिका होती है। इसमें अनुवादक की सर्जनात्मक शक्ति कार्य करती है और उसकी अपनी शैली या व्यक्ति की छाप आ जाती है। उदाहरण के लिए बाल्मीकि रामायण का यह अंश देखें जिसका भावानुवाद तुलसीदास ने मानस में किया है। इसे हम बिंब-प्रतिबिंब अनुवाद कह सकते हैं।

देशे-देशे कलत्राणि देशे-देशे च वान्ध्वाः।

तुं तु देशं न पश्यामि यत्रा भ्राता सहोदरः।।

मानस- सुतवित नारि भवन परिवारा। होंहि जाहि जग बारहिं बारा।

अस विचार जियं जागहु ताता। मितर न जगत सहोदर भ्राता।

यहां मूल और अनुवाद के कथ्य में कोई अन्तर न होने पर कथन वाणी में भेद है। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण सोमनाथ कृत 'भाधव विनोद' में देखिए-

नवेषु लोघ्रप्रसवेषु कांतिर्दृशः कुरंगेषुगतं गजेषु।

लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया में।।

मालतीमाधव 9.27

अनुवाद- लोद के बृच्छनि देह की दीपति लोचन चारू कुरंगनि छीने।

चोरि लयो नइबो नवबेलिनि पाइ अकेलि विनोद बिहिने।।

श्री ससिनाथ की सोंह मतंगनि सुन्दरि की गति आनंद भीने।

बांट लिए अंग-अंग सु यों मनभावती के अपनो मत कीने।।

यहां सोमनाथ ने जो भावानुवाद प्रस्तुत किया है उसमें उसके मूल पाठ का रसास्वादन नहीं हो पाता किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह सोमनाथ की मौलिक रचना हो। उसमें ब्रजभाषा के शब्द-गुंफन, अभिव्यक्ति चातुर्य, लयविधान, मुहावरा सौष्ठव की झलक मिलती है मूल की नहीं।

9.4.3 छायानुवाद

मूल कृति का पठन करने के बाद अनुवादक ने जो समझा, जो उसे अनुभूति हुई, जो अनुभव हुआ या उसके मन पर जो प्रभाव पड़ा, उसके संदर्भ में वह मूल पाठ का लक्ष्य भाषा में जो रूपांतरण करता है वह छायानुवाद है। इसमें अनुवादक को पूरी छूट होती है कि वह मुख्य भाव को लेकर पाठ रचना करें। वास्तव में छायानुवाद में मूलपाठ की छाया मात्रा होती है। इसमें मूल पाठ के कथ्य का अनुकूलन लक्ष्य भाषा की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों के अनुसार होता है। यह एक प्रकार का रूपांतरण अथवा अनुसृजन है। इस प्रकार के अनुवाद मूलपाठ का मंतव्य और भाव भी बता देते हैं और अपनी मौलिकता भी बनाए रखते हैं। भारतीय प्राचीन साहित्य में विशेष रूप से उत्तर मध्यकाल-रीतिकाल में छायानुवाद की एक विशिष्ट परंपरा अपने उत्कृष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। उस युग के कवि आचार्य जो कि राजश्रय में रहकर साहित्य सृजन में प्रवृत थे अपनी विद्वता की धाक जमाने तथा मौलिकता को दर्शाने के लिए संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद करके काव्य के विविधंगों के निरूपम को महत्त्व प्रदान कर रहे थे। जयदेव, अप्पयदीक्षित, मम्मट तथा जगन्नाथ जैसे संस्कृताचार्यों के ग्रंथों को आधार बनाकर भूषण, मतिराम, पदमाकर सोमनाथ, चिंतामणि, भिखारीदास आचार्यों ने अनेक छायानुवाद हिंदी साहित्य को प्रदान किए। वे संस्कृत मूल के पदों को ब्रजभाषा में अनूदित करने के पश्चात् उनका विवेचन-विश्लेषण करते हुए भी दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में कहीं-कहीं मूल भाव आचार्य की लेखनी से दूर हो गये। फिर भी छायानुवाद की दृष्टि से उनके ग्रंथों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। संस्कृत काव्यशास्त्र जिसकी पहुंच एक विशिष्ट समुदाय तक सीमित थी, इन आचार्यों के परिश्रम और प्रयास से सामान्य जनसमूह तक पहुंच चुकी थी। छायानुवाद का एक विशिष्ट उदाहरण देखिए। रहीम के दोहे लोक प्रसिद्ध हैं। रहीम ने संस्कृत साहित्य के अनेक लौकिक नीति वचनों का शब्दानुवाद प्रस्तुत किया है। उनके दोहों में छायानुवाद के भी अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे 'भावी' अथवा भाग्य के संबंध में एक श्लोक प्रसिद्ध है जिसमें भगवान के प्रति असीम आस्था व्यक्त करते हुए एक संस्कृत कवि ने निम्नलिखित श्लोक में कहा है कि जिस जीव की रक्षा दैव करता है, वह अरक्षित होते हुए भी सुरक्षित होता है और जिसे दैव मारना चाहता है वह सुरक्षित होते हुए भी नष्ट हो जाता है। दैव द्वारा रक्षित व्यक्ति अनाथ होते हुए भी वन में जीवित रहता है, और दैव जिसके प्रतिकूल हो वह रक्षा का प्रयत्न करते हुए भी अपने ही घर में नाश को प्राप्त हो जाता है-

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षिंत, सुरक्षितं दैवहतं विनिश्यति।

जीवत्थनाथेपि बिने बिसर्जितः कृतप्रयतनोपि विनिश्यति।

(शारंधर पति, 446)

रहीम ने अपने एक दोहे में कमोबेश इसी का छायानुवाद प्रस्तुत किया है। उनके निम्नलिखित दोहे में उक्त श्लोक की सुदूर छाया है जिसमें रहीम स्पष्ट कहते हैं कि दैव के प्रतिकूल होने पर भी व्याधियां मनुष्य का साथ नहीं छोड़तीं- भले ही वह उनके निदान के लिए अनेक औषधियां क्यों न कर ले और अनाथों के नाथ हरि के अनुकूल होने पर पशु-पक्षी

वन में नीरोग ही बने रहते हैं-

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छांड़त साथ।

खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ।।

(रहीम रत्नावली 19/210)

9.5 प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांत

भारत में अनुवाद सिद्धांत चिंतन की वैसी परंपरा नहीं मिलती जैसी यूरोप में दिखाई पड़ती है। व्यापक भारतीय संस्कृति के निर्माण में अनुवादों की गरिमामयी भूमिका तो दिखाई देती है किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य में दुनिया की अन्य देशों की भाषाओं के अनूदित ग्रंथ नहीं मिलते। यह इस बात का प्रमाण है कि इस देश का साहित्य ज्योतिष, गणित, दर्शन विश्व के दूसरे देशों से काफी आगे था। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत की विश्वव्यापी धाक थी। इसलिए भारतीय ज्ञान-विज्ञान विश्व की अन्य भाषाओं में रूपांतरित अनूदित होता रहा तथा यहां उसकी कोई आवश्यकता नहीं महसूस की गई। यही कारण है कि प्राचीन भारत में अनुवाद के सिद्धांतों को लेकर कोई सुव्यवस्थित विचार नहीं हुआ। फिर भी जब हम प्राचीन अनूदित ग्रंथों का अध्ययन और विश्लेषण करें तो हमे उसे अनुवाद सिद्धांत की तीन कोटियों में रख सकते हैं।

9.5.1 अर्थ संप्रेषण का सिद्धांत

प्राचीनकाल के अनुवाद कर्म में भाषा की संरचना के सूक्ष्म विश्लेषण करने के साथ-साथ भाषा के अर्थ पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। कदाचित भाषा के आते सूक्ष्म विश्लेषण की यह स्वाभाविक परिणति थी। इस युग के विद्वानों ने शरीर और आत्मा का संबंध बताते हुए अनुवाद को एक आत्मा (अर्थ) को मूल काया में से निकाल कर परकाया में प्रवेश या पुनर्जन्म समझा था। उनकी यह धारणा थी कि प्रत्येक प्रतीक अपने संदर्भ से ही अर्थ ग्रहण करता है और इसलिए एक भाषिक प्रतीक के एकाधिक अर्थ हो सकते हैं और होते भी हैं। इस प्रकार उन्होंने अपनी अनुवाद प्रक्रिया में किसी मूल पाठ में प्रयुक्त किए जाने वाले भाषिक प्रतीकों के संदर्भपरक अर्थ का ध्यान रखते हुए किसी अन्य भाषा व्यवस्था में वैसे ही भाषिक प्रतीक चुने जो अपने भाषिक संदर्भ में वेसा ही अर्थ देने में समर्थ हो। इस युग के अधिकांश विद्वानों की अनूदित कृतियों का अध्ययन करने के उपरांत सिद्ध होता है कि उनकी दृष्टि में भूल के भावों (अर्थ की रक्षा करते हुए दूसरी भाषा में बदलना ही अनुवाद है। इससे ध्वनित होता है कि अर्थ का अस्तित्व भाषा से अलग माना गया है। अनुवाद के इस अर्थपरक सिद्धांत के विकास के साथ-साथ भाषा के विभिन्न अर्थों का विश्लेषण भी और अधिक गहन होता चला गया और भाषा में दार्शनिक अर्थ, वाच्यार्थ, भावार्थ, लाक्षणिक अर्थ, व्यंग्यार्थ आदि पर भी प्रकाश डाला जाने लगा। उदाहरण के लिए भारतीय ग्रंथों का फारसी अनुवाद अर्थ संप्रेषण के सिद्धांतों का पालन किया गया है जैसे-अबुल फजल, कासिम बेग, नबी खां, मुल्लाशाह मुहम्मद आदि ने अनेक संस्कृत ग्रंथों जैसे हरिवंश पुराण, महाभारत, पंचतंत्र आदि का फारसी अनुवाद प्रस्तुत किया जिसमें अर्थ की रक्षा करते हुए उसे एक नयी शैली में प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिए खुशामद के संबंध में शेख सादी का एक प्रसिद्ध शेर था कि अगर बादशाह दिन को रात कहें तो खुशामद करने वाले को यही कहना चाहिए कि वह चंद्रमा है, वह रोहिणी है-

अगर शहरोज रा गोयद शब अस्त हूँ।

वपायद गुफत ईनक माहो परवीं।।

रहीम ने उपरोक्त शेर का उसकी अर्थ की रक्षा करते हुए वैसे ही भाषिक प्रतीक चुने जो शेख सादी के उपरोक्त शेर में था। रहीम उसके संदर्भपरक अर्थ में कहते हैं कि यदि तुम किसी राजा के राज्य में रहने के इच्छुक हो तो राजा की आवाज में आवाज मिलाओ, उसी के समान बोलो। यदि वह दिन को रात कहे तो तुम उसे तारों का समूह दिखाओ-

रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।

जो बासर को निसि कहै, तो कचपची दिखाव।

(रहीम रत्नावली 10/188)

9.5.2 व्याख्या का सिद्धांत

पाश्चात्य जगत में कई लोगों का मत था कि अनुवाद मूलतः व्याख्या है। नायडा भी इस कथन को पुष्ट करते हैं कि अनुवाद में कुछ न कुछ व्याख्या होती है। इन विद्वानों का तर्क था कि एक ही सामग्री के दो अनुवादकों द्वारा किए गए अनुवादों की भिन्नता यही सिद्ध करती है कि प्रत्येक अनुवादक उस सामग्री की व्याख्या करता है।

अनुवाद की यह परिभाषा उसे 'भाष्य' की सीमा तक पहुंचा देती है। प्राचीन भारतीय अनूदित साहित्य को देखें तो अनुवाद का यह सिद्धांत वेदों से ही चला आ रहा है जिसे पाश्चात्य जगत ने बाद में पहचाना। मूल पाठ में कुछ विशेष उक्तियां, कथन या शब्दावली होती थी जिनकी व्याख्या करना अति अनिवार्य था। बिना ऐसा किए अर्थ को संप्रेषित करना कठिन कार्य था, विशेषतः वेदों, पुराणों, ब्राह्मणग्रंथों, उपनिषदों आदि के अनुवाद में। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य में भाष्य और टीका की विशाल परंपरा विद्यमान रही है। इस परंपरा का विस्तृत उल्लेख न करके केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अकेले शतपथ ब्राह्मण पर अनेकानेक भाष्य और टीकाएं मिलती हैं। इनमें हरिस्वामी सायण और कवींद्र सरस्वती के भाष्य अति प्रामाणिक माने गये हैं। शंकराचार्य के अतिरिक्त रामानुज, निंबार्क, वल्लभ, मध्वाचार्य आदि संप्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों ने भाष्य-टीकाएं लिखीं। रीतिकालीन काव्यशास्त्रियों ने संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का भावानुवाद छायानुवाद प्रस्तुत करते समय लक्षण तथा उदाहरणों के माध्यम से अनुवाद के व्याख्या सिद्धांत को पुष्ट किया है। भानुदत्त की रसमंजरी, मम्मट के काव्य प्रकाश, विश्वनाथ के साहित्य दर्पण आदि आचार्यों के ग्रंथों का व्याख्यापरक अनुवाद केशव, चिंतामणि, भूषण, मतिराम, सोमनाथ, कुलपति आदि रीतिकालीन आचार्यों ने रस, नायक-नायिका भेद, अलंकार, छंद आदि लक्षण ग्रंथों को हिंदी में प्रस्तुत करते समय इनकी व्याख्याएं एवं टिप्पणियां भी प्रस्तुत कीं।

9.5.3 समतुल्यता का सिद्धांत

अनुवाद प्रक्रिया में अनुवादक को तीन सोपानों से गुजरना पड़ता है- विश्लेषण, अंतरण और पुनर्रचना। स्रोत भाषा में पाठ का अर्थ प्राप्त करने के पश्चात् उसके कथ्य का अंतरण लक्ष्य भाषा की आंतरिक संरचना में होता है। अंतरण की इस प्रक्रिया में स्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा की अर्थगत अभिव्यक्तियों को भाषिक, शैलीगत, सामाजिक-सांस्कृतिक और सौंदर्यपरक स्तरों पर सामना करना पड़ता है। इस दृष्टि से अनुवाद संप्रेषण का मात्र अंतरभाषिक व्यापार नहीं वरन् एक जटिल संरचना है। स्रोतभाषा का मूलपाठ और लक्ष्यभाषाका अनूदित पाठ पूर्ण रूप से एक समान नहीं होते। इसलिए अनुवादक को लक्ष्यभाषा के अर्थ को स्रोतभाषा के अर्थ के मूलगुण से यथासंभव निकट बनाए रखना पड़ता है। अर्थ की इस निकटतम सादृश्यता को समतुल्यता की संज्ञा दी गई है। वास्तव में समतुल्यता शब्द गणित से आया है। जिसमें समानता की खोज की जाती है। इस संदर्भ में मूल पाठ और अनूदित पाठ पूर्ण समरूपी नहीं होते वरन् समतुल्य और सममूल्य होते हैं। इस प्रकार समतुल्यता का यह सिद्धांत प्राचीन भारतीय अनूदित कृतियों पर भी लागू होता है जहां अनुवादकों ने मूलभाषा के अर्थ के मूलगुण से लक्ष्य भाषा के अर्थ को यथासंभव निकट बनाए रखा और यही तथ्य उनके सफल अनुवाद कर्म को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। समतुल्यता के इस सिद्धांत को रामचरितमानस की निम्नपंक्तियों में देखा जा सकता है जहां तुलसीदास ने श्रीमद्भगवद् गीता की निम्नलिखित पंक्तियों का समतुल्य और सममूल्य अनुवाद प्रस्तुत किया है-

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

-श्रीमद्भगवद्गीता-अध्याय-4

अनुवाद-

जब जब होइ धरम कै हानि। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।

तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

(बालकांड)

एक और उदाहरण द्रष्टव्य है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने अपने संस्कृत ज्ञान के कारण संस्कृत साहित्य के अनेक श्लोकों का समतुल्य अनुवाद प्रस्तुत किया, जिसमें संस्कृत और ब्रजभाषा के अर्थों की सामंजस्यता देखते ही बनती है। उदाहरण के तौर पर प्रसंगाभरणम् का निम्नलिखित संस्कृत श्लोक द्रष्टव्य है-

याचना हि पुरूषस्य महत्वं नाशयत्खिलमेव तथाहि।

सद्य एवं भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन्।।

(प्रसंगाभरणम्)

रहीम ने इस श्लोक के समतुल्य प्रभाव को लेने के साथ-साथ शब्दावली को भी ग्रहण किया है-

रहिमन याचकता गहे, बडे छोट ह्वै जात।

नारायनहू को भयो, बावन आँगुर गात।।

(रहीम रत्नावली, 19/218)

इस प्रकार समतुल्यता के सिद्धांत को जब हम प्राचीन साहित्य के निष्कर्ष पर रखकर देखते हैं तो हम पाते हैं कि यह सिद्धांत निम्नलिखित बातों पर आधारित हैं-

1. भाषाओं की समीपता

2. विषयवस्तु का स्वरूप एवं उसकी शैली

3. अनुवादक की प्रतिभा एवं कौशल

निष्कर्षतः प्राचीन भारतीय साहित्यिक अनुवाद बहुस्तरीय एवं बहुआयामी है। प्राचीन भारतीय अनुवादक ने किसी सिद्धांत को लेकर अनुवाद कर्म में प्रवृत्त नहीं हुए हैं उनका अनुवाद कर्म उनकी प्रतिभा क्षमता और अभ्यास से सुफल हुआ है। किन्तु विश्लेषण करने पर उनके अनुवाद कर्म में पाश्चात्य अनुवाद सिद्धांतों का बहुविध रूप प्रकट होता है। प्राचीन साहित्य जैसे वेद, पुराण, ब्राह्मण, उपनिषद, संस्कृत नाटक, नीति काव्य महाकाव्य, काव्यशास्त्रीय ग्रंथ आदि अपनी विशिष्टताओं के साथ मौजूद थे। इन प्राचीन अनुवादकों के भीतर दो भाषाओं की टकराहट, अनुवाद विशेष का व्यक्तित्व, उसकी संवेदना और भाषायी समझ, मूल रचना का सौंदर्यपरक वैशिष्ट्य तथा उनका सर्जनात्मक रूपांतरण अपनी विशिष्ट अलग-अलग भूमिका निर्मित है जिसके कारण उनके समक्ष अनुवाद कार्य दुष्कर और जटिल बन चुका था किन्तु इन अनुवादकों ने अपनी असाधारण प्रतिभा, क्षमता और अभ्यास के बल पर भारतीय वाङ्मय को अपनी असाधारण और मूल्यवान भेंट की है जिसके लिए संपूर्ण भारतीय समाज उनका ऋणी है।

9.6 सारांश

प्राचीन भारतीय अनुवाद के संदर्भ में आपने इसकी परंपरा और प्रवृत्ति को पढ़ा कि किस प्रकार भारतीय वाङ्मय में अनुवाद की एक प्राचीन परंपरा विद्यमान रही है। आपने अनुवादकों के प्रयोजन को पढ़ा तथा साथ ही प्राचीन भारतीय

अनुवाद सिद्धांत के क्षेत्र के बारे में जानकारी हासिल की। आप अनुवादों के प्रकारों जैसे शाब्दिक अनुवाद, छायानुवाद, भावानुवाद से परिचित हुए। आप प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांतों के आलोक में अर्थ संप्रेषण का सिद्धांत, व्याख्या का सिद्धांत, समतुल्यता के सिद्धांत का अध्ययन किया तथा यह जाना कि इन विद्वानों ने किन्हीं सिद्धांतों के निर्देशानुसार अनुवाद कर्म नहीं किया वरन् यह उनकी प्रतिभा, क्षमता, कौशल आदि की सहज परिणति थी।

9.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय अनुवाद की परंपरा का विस्तार से उल्लेख करें-
2. निम्नलिखित बिंदुओं पर सोदाहरण टिप्पणी लिखिएः-

   (क) भारतीय अंतः भाषिक अनुवाद

   (ख) भारतीय अंतर भाषिक अनुवाद

   (ग) भारतीय अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद
3. प्राचीन भारतीय अनुवादों को अर्थ की दृष्टि से कितने भागों में बांटा गया है? उन्हें सविस्तार समझाइए।
4. प्राचीन भारतीय अनुवाद सिद्धांतों को सोदाहरण समझाइए।

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (संपा.) *आज का भारतीय साहित्य,* दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स।
2. नगेन्द्र (संपा) *अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं अनुप्रयोग,* दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
3. तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद कला,* दिल्ली, शब्दकार प्रकाशन।
4. गोस्वामी, कृष्ण कुमार, 2008, *अनुवाद विज्ञान की भूमिका,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
5. रणसुभे, सूर्यनारायण, 2009, *अनुवाद का समाजशास्त्र,* गाजियाबाद, अमित प्रकाशन।
6. मिश्र, विद्या निवास (संपा.) *रहीम रचनावली*।

इकाई 10 बौद्ध अनुवाद सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 बौद्धदर्शन का विस्तार और अनुवाद की आवश्यकता

10.3 चीन में बौद्ध दर्शन और अनुवाद की अवस्थाएं

- 10.3.1 पहली अवस्था
- 10.3.2 दूसरी अवस्था
- 10.3.3 तीसरी अवस्था
- 10.3.4 अनुवाद सिद्धांत : मूल्यांकन

10.4 तिब्बत में बौद्ध दर्शन और अनुवाद सिद्धांत का विकास

10.5 अनुवाद दान के रूप में

10.6 सारांश

10.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि-

- बौद्धदर्शन का स्वरूप क्या है और विकास किस प्रकार हुआ है।
- बौद्ध दर्शन के प्रचार-प्रसार के कारण विकसित अनुवाद सिद्धांत क्या है।
- इस अनुवाद सिद्धांत की क्या विशेषताएं रही हैं।
- दो परस्पर भिन्न संस्कृति में अनुवाद किस प्रकार संभव हो पाया है।
- इस अनुवाद सिद्धांत ने भाषा, साहित्य और संस्कृति को किस रूप में प्रभावित किया है।

10.1 प्रस्तावना

बौद्ध दर्शन महात्मा बुद्ध की शिक्षा के आधार पर विकसित हुआ। यहां यह कहना भी उचित होगा कि स्वयं बुद्ध ने कोई अनुवाद का सिद्धांत विकसित नहीं किया। परन्तु, विभिन्न कारणों से इस दर्शन में अनुवाद की आवश्यकता पड़ती गयी। स्वयं बुद्ध ने यह निर्देश अपने अनुयायियों को अवश्य दिया था जिसे कुलबग्ग में संकलित किया गया है, कि वे उनकी शिक्षा को अपनी भाषा में संकलित करें। यह कई प्रकार से शब्द को प्रमाण के रूप में अस्वीकार करना था जिसके आधार पर वेद और उपनिषदों को अपौरूषेय सिद्ध किया जाता है। बौद्ध दर्शन ने जिस तत्वमीमांसा को विकसित किया उसी के आधार पर अपनी ज्ञानमीमांसा का विकास किया। इस अनात्मवादी बौद्धदर्शन में क्षणवाद को स्थापित किया। इसने बौद्ध दर्शन के सिद्धांतों को अपनी भाषा में संकलित करने के प्रयास को सार्थक रूप देने का सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। आम आदमी के इस दर्शन में भाषा की सरलता का आग्रह स्वाभाविक है। इस दर्शन का प्रसार भारत के बाहर बहुत समय तक होता रहा। इस प्रसार ने कई वाक्-समुदायों को प्रभावित किया। यह प्रसार अनुदित बौद्ध साहित्य के

बिना संभव नहीं था। अतः इस विस्तार ने अनुवाद को अनिवार्य बना दिया। इसने अनुवाद के स्थापित सिद्धांतों को कहीं दूर तक प्रभावित किया है। इतना ही नहीं, भाषाई-सांस्कृतिक विविधता के बीच अनुवाद के माध्यम से स्थापित बौद्ध धर्म की धार्मिक विजय ने भाषावैज्ञानिकों, इतिहासकारों आदि को भी आश्चर्यचकित किया है। इसने संस्कृत के एक ऐसे रूप को विकसित किया जिसे बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत कहा जाता है।

महात्मा बुद्ध ने मूलतः जीवन के मूलभूत प्रश्नों को उठाया। आरंभिक दिनों में यह दर्शन जीवन जीने के मार्ग के रूप में रहा। लेकिन, बाद के दिनों में इनके उपदेशों का दार्शनिक आधार विकसित होता गया। यह दर्शन नास्तिक था। अर्थात् यह वेदों के अस्तित्व और उनके अपौरूषेय रूप को अस्वीकार कर विकसित हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस दर्शन की ज्ञानमीमांसा में शब्द को प्रमाण के रूप में नहीं स्वीकार किया। वेद को आधार बनाकर विकसित हुए सभी दर्शन शब्द को प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। शब्द संबंधी इस नयी सोच ने शब्द और अर्थ के उस पारंपरिक स्वरूप को भी नया रूप दिया, जो पूरे वैदिक दर्शन में प्रतिष्ठित हो चुका था।

10.2 बौद्धदर्शन का विस्तार और अनुवाद की आवश्यकता

बौद्ध दर्शन का विकास भी कमसे कम तीन चरणों में हुआ। महत्त्वपूर्ण यह है कि तीनों ही चरणों में इस धर्म-दर्शन का प्रचार-प्रसार होता रहा। पहले चरण में बौद्ध दर्शन की हीनयान शाखा का विकास हुआ। मौद्रलीपुत्र तिष्य ने तीसरी बौद्ध महासभा (संगीति) के अनन्तर कथ्ज्ञावत्थु का संकलन किया था। पालि भाषा में संकलित यह ग्रंथ स्थविरवाद का मुख्य ग्रंथ है। महत्त्वपूर्ण यहां यह है कि इसी पालि भाषा में उनके उपदेशों को प्रथमतः संकलित किया गया। महात्मा बुद्ध के समय में उनके प्रदेश की भाषा होने के कारण इसका महत्त्व और भी बढ़ गया। खारवेल के अभिलेख और गिरनार की धर्मलिपि में भी इसी भाषा का प्रयोग हुआ है। बौद्ध दर्शन की इस शाखाका साहित्य आज भी भारत में सुरक्षित है। बौद्ध दर्शन से अपने जुड़ाव के चलते ही इस भाषा का प्रयोग 'पंक्ति' या 'पाठ' के संदर्भ में होता है। कथावत्सु, जिसे अभिधम्म का अंतिम ग्रंथ भी कहा जाता है, हीनयान में बहुत महत्त्व रखता है। इसी हीनयान के अंतर्गत थेरावाद, वैभाषिक या सर्वस्तिवाद का विकास हुआ। इतना ही नहीं, प्रसिद्ध सौतांत्रिक दर्शन भी इसी हीनयान में परिवर्तन के बाद विकसित हुआ। पालि भाषा में अभिधम्म कोश के सात ग्रंथ हैं। इन्हें बुद्ध के वचन के रूप में रखा गया है। सर्वस्तिवाद के सिद्धांत संस्कृत में हैं। मध्य एशिया में इधर कुछेक मिले भी हैं। चीन की त्रिपिटक में इसे सुरक्षित रखा गया है। किमुरा ने अपनी पुस्तक हीनयान और महायान में आठवीं सदी के बौद्ध भिक्षु विनीत देवच के उस कथन को रखा है जिसमें उन्होंने यह लिखा है सर्वस्तिवादियों ने संस्कृत का, महासंघ के श्रमणों ने प्राकृत का, साम्मतिया ने अपभ्रंश का और स्थाविरवादियों ने पैशाची का प्रयोग अपने ग्रंथों ओर शिलालेखों के लिए किया है। बौद्ध दर्शन की तीसरी महासंगीति जो अशोक के समय में हुई थी, के बाद ही स्थविरवाद का पतन भारत में होने लगा। इतना ही नहीं, प्रसिद्ध चीनी अनुवादक धर्मराक्षस के द्वारा अनूदित बहुत से ग्रंथों के अध्ययन से गांधारी प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

पहले चरण में बौद्ध दर्शन का विस्तार श्रीलंका, कंबोडिया, म्यांमार आदि देशों में हुआ। इन देशों में अनुवाद कार्य इन्हीं भाषाओं के साथ आरंभ हुए। बाद में स्थिति बदल गयी। वैसे तो चीन में बौद्ध दर्शन का प्रसार ईसा की पहली सदी के आस-पास हुआ। यह महायान के विकास का समय भी था। लेकिन कुछ चीनी इतिहासकार इससे असहमत हैं। उनका यह कहना है कि बौद्ध दर्शन सिल्क रूट से चीन में नहीं आया उसने समुद्री रास्ता लिया। इस असहमति से अनुवाद की प्रक्रिया भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है। इसका एक कारण यह है कि आरंभिक प्रमाण प्राकृत से चीनी भाषा में अनुवाद के मिलते हैं।

बौद्ध दर्शन की दूसरी अवस्था का विकास नागार्जुन के माध्यमिक दर्शन के साथ आरम्भ हुई। इस दर्शन ने बुद्ध के लोक से इतर रूप को संसार के आधार के रूप में स्थापित किया। इतना ही नहीं, अरहत के स्थान पर बोधिस्त्व को महत्त्वपूर्ण बना दिया गया। इस दर्शन ने वैयक्तिक निर्वाण के सिद्धांत का सामान्यीकरण करते हुए उसे पूरे मानव जीवन के साथ जोड़ दिया। यहीं कारण है कि इस दर्शन में यथार्थवाद के स्थान पर भाववाद और बहुलतावाद के स्थान पर पूर्णतावाद को महत्त्व दिया गया।

श्रीलंका, वर्मा, कम्बोडिया आदि देशों में बौद्धदर्शन की हीनयान शाखा का विकास हुआ तो महायान शाखा चीन और

जापान में विकसित हुई। जापान में यह दर्शन चीन के रास्ते गया। इसने जापान को चीनी रंग से रंगने का कार्य किया। चीनी भाषा में अनूदित त्रिपटिक तांग और सुंग राजवंश में चीन द्वारा जापान भेजा गया। वहां इसका कम से कम चार बार अनुवाद हुआ। राजकुमार शोतकू तासी ने इस दर्शन को राजधर्म का दर्जा दिया। इसके लिए तीन ग्रंथों का चुनाव हुआ। प्रसिद्ध अनुवादक कुमारजीव द्वारा अनूदित विमलकीर्ति निर्देश सूत्र को भी इसमें सम्मिलित किया गया। इसका आशय यह नहीं है कि हीनयान के ग्रंथों से चीन और जापान अपरिचित थे। अभी कुमारजीव के द्वारा अनूदित कुछ ग्रंथों का पता चला है जो हीनयान के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

बौद्ध दर्शन की तीसरी अवस्था का विकास विज्ञानवाद और योगाचार के साथ हुआ। यह आदर्शवाद का उत्कर्ष कहा जा सकता है। दिननाग और धर्मकीर्ति विज्ञानवाद के प्रमुख आचार्य रहे हैं। वासुबंधु और असंग ने योगाचार को स्थापित किया।

एक वाक्-समुदाय से दूसरे वाक्-समुदाय तक इस दर्शन के विस्तार ने अनुवाद को अनिवार्य बना दिया। परन्तु, यहां केवल यह कहना ही पर्याप्त नहीं होगा। भारत के बाहर यह दर्शन जिस तीव्रता के साथ फैला, उससे अनुवाद के समक्ष कई समस्याएं भी उत्पन्न हुईं। यह एक भाषा परिवार से दूसरे भाषा परिवार तक की यात्रा भी थी। इस नयी परिस्थिति में किसी भी एक ऐसे व्यक्ति को खोजना बहुत कठिन था जो दो भाषाओं पर उतना नियंत्रण रखता हो, जितनी आवश्यकता अनुवाद के लिए होती है। अतः सामूहिक अनुवाद का आरंभ हुआ। सामूहिक अनुवाद को अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। इस प्रकार, बौद्धदर्शन का प्रभाव बहुत गहरा रहा है। इस दर्शन के विस्तार ने नयी भाषा विकसित की है, नया शब्दकोश दिया है, नया दर्शन दिया है, साहित्य और कलाओं को प्रभावित किया है।

10.3 चीन में बौद्ध दर्शन और अनुवाद की अवस्थाएं

चीन में अनुवाद की परम्परा बहुत गहरी है। हान साम्राज्य के पहले भी अनुवाद के प्रमाण मिलते हैं। परन्तु पहली अवस्था निसंदेह हान साम्राज्य के समय से आरंभ हुई है। हानसाम्राज्य का समय ईसा के 195 वर्ष पहले से ईसा के सात वर्ष बाद तक है। इसके तुरंत बाद तीन साम्राज्य विकसित होते हैं ओर इन्हें इसी नाम से जाना भी जाता है। इन दोनों अवस्थाओं का समय ईसा के 195 वर्ष पहले से लेकर ईसा के 265 वर्ष बाद तक रहा है। दूसरी अवस्था जिन साम्राज्य और दक्षिणी साम्राज्य तथा उत्तरी साम्राज्य अर्थात् ईसा के 265 वर्ष बाद से ईसा के 589 वर्ष तक की है। तीसरी अवस्था सुई, तांग और उत्तरी सांग साम्राज्य तक बनी रहती है। इनका समय ईसा के 589 वर्ष से लेकर ईसा के 1100 वर्ष तक रहा है।

लगभग 1200 वर्ष के इस लम्बे अंतराल में अनुवाद कार्य होते रहे हैं। इन्हें आरंभ, विकास और उत्कर्ष के रूप में भी देखा जा सकता है। परन्तु कुछ अनुवादक इसके अपवाद रहे हैं। इस संदर्भ में धर्मराक्षस (232-309), कुमारजीव (350-409) डाओ एन (314-385) और झि क्वियान का नाम लिया जा सकता है। हुआन त्सांग (600-664) का योगदान बहुत रहा है, परन्तु उनका नाम तीसरी अवस्था में ही आता है। कहना नहीं होगा कि पहले के चारों अनुवादकों का योगदान अनुवाद सिद्धांत की दिशा को बदलने में महत्त्वपूर्ण रहा है।

10.3.1 पहली अवस्था (ईसा के 195 वर्ष पहले से लेकर ईसा के 265 वर्ष बाद तक)

पहली अवस्था कब आरंभ हुई, यह कहना बहुत कठिन है। कुमिंग में ईसा के 120 वर्ष पहले एक झील की खुदाई का कार्य हो रहा था। वहां एक रहस्यमय वस्तु मिली। कुछ विद्वान, जैसे कि ओ.फ्रेंक यह कहते हैं कि शांगेन प्रांत में बौद्धदर्शन ईसा की दूसरी सदी में पहुंच चुका था। यह हॉन साम्राज्य का समय है। जर्चर ने कई मिथकीय कहानियों का उल्लेख किया है, जिनका उपयोग बौद्धदर्शन को स्थापित करने के लिए आरंभिक समय में किया गया है। ईसा की दूसरी सदी के साथ ही बौद्ध दार्शनिकों की चीन में उपस्थिति के ऐतिहासिक प्रमाण चीन में मिलने लगते हैं। पार्थिया का ऐन शिगाओ 148 ईसवी में चीन आया था और ल्यूयांग में अनुवाद कार्य में लीन हो गया था। यह समय उत्तर हान साम्राज्य का है। ल्यूयांग इसकी राजधानी थी। सम्राट लिंग के समय अर्थात् 168 से 190 ईसवी के बीच कभी प्रसिद्ध अनुवादक झि क्वियान के पितामह चीन में आकर बस गये थे।

बौद्ध दर्शन के चीन में आगमन के साथ ही बौद्ध भिक्षुओं का चीन आना शुरू हो गया। पर्थिया का शिह-काओ 148 ई. के आसपास आया था। (जर्चर 1959) शिह काओ का उद्देश्य बौद्ध त्रिपिटिक का चीनी भाषा में अनुवाद करना था। यह आरंभिक समय था। इस आरंभिक अवस्था में बाहर से आया कोई बौद्ध भिक्षु ही अनुवाद कार्य को करता था। यह समय डाओवाद के प्रभाव का समय भी है। आरंभिक समय में अनुवाद कार्य करते हुए सादृश्य अथवा तुल्यता स्थापित करने का प्रयास दिखता है। इसे विद्वानों ने सादृश्य पर आधारित अर्थ स्पष्टीकरण को यही कहा है। फुंग यु लान ने कि कभी लाओत्से भारत गये थे और उन्होंने बुद्ध को शिक्षित किया था। यही कारण है कि चीन के बौद्ध बुद्ध और ताओ के दर्शन में समानता स्थापित करने का प्रयास करते थे। उनके लिए बौद्ध दर्शन ताओ ते शिंग का विदेशी संस्करण मात्र था और बुद्ध उनके गुरू के शिष्य। लान ने इसी आधार एर यह कहा है कि आरंभिक अनुवादों में बौद्ध दर्शन से जुड़े हुए शब्दों के स्थान पर ताओ धर्म के शब्दों का भरपूर प्रयोग मिलता है। धर्मराक्षस के अनुवादों में तो इसे कहीं दूर तक देखा जा सकता है। यहां तक की बाद के समय में कुमारजीव ने भी कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। 224 ई. के बादएक नयी पद्धति का विकास होता दिखता है। धर्मपाद, फा-चु-चिंग ने दो चीनी सहयोगियों को साथ लेकर अनुवाद कार्य का आरंभ किया। इनके नाम वे चीन नान और चु लू-येन थे। इस सदी में इसी विधि का पालन होता दिखता है। धर्मराक्षस 232-309ई. तक के भी दो सहयोगियों का पता मिलता है। निह-चे यान और निह ताउ-चेन। निसंदेह, धर्मराक्षस इस पहली अवस्था के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुवादक हैं। इनकी जीवनी झू फाहू झुआन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस महान अनुवादक का जन्म डुन्हांग में हुआ था। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने घर छोड़ दिया था और विदेशी श्रमण गाओजुओ को अपना गुरू बना लिया था। जिन साम्राज्य के शासक वू के शासन में धर्मराक्षस ने बहुत अनुवाद किए। अजुरे नदी के तट पर उन्होंने एक बौद्ध विहार स्थापित किया। यह शांगेन प्रांत में है। उनके हजारों शिष्य वहां रहते थे और अनुवाद कार्य में संलग्न थे। धर्मराक्षस ने बहुत से अनुवाद किए। सधर्मपुडरिक को, जिसका अनुवाद लोटस सूत्र नाम से किया गया, चीन में बहुत लोकप्रियता मिली थी।

हॉन साम्राज्य के अंतर्गत जिन अनुवादकों ने अनुवादकार्य किए वे मूलतः चीन से बाहर के रहने वाले थे। झि क्वियान ने जिन ग्रंथों को 220 ई. में ल्यूयांग से एकत्रित किया वे विदेशी अनुवादकों द्वारा अनुदित थे। यहां यह कह देना आवश्यक है कि विदेशी बौद्ध भिक्षु को लिखित चीनी भाषा का ज्ञान नहीं था। वह बौद्ध ग्रंथों को मौखिक चीनी भाषा में व्याख्यायित करता जाता था। लिखने के समय जिस चीनी का सहयोग लेता था उसे विदेशी बौद्ध भिक्षु की भाषा का ज्ञान नहीं था। इसलिए वह उतना ही लिख पाता था जितना कि विदेशी भिक्षु कहता था। वह स्वयं टैक्स्ट नहीं समझता था। इतना कहना भी ठीक नहीं होगा। भारतीय परम्परा में ग्रंथ लिखित कम और मौखिक अधिक थे। भिक्षु अपनी स्मृति के सहारे ही ग्रंथों को सुनाया करते थे। इसका उल्लेख फाहियान ने भी किया है।

यह दो परस्पर अज्ञात भाषाओं और संस्कृतियों के बीच अनुवाद था। इसमें गलतियों की भी संभावना थी।

10.3.2 दूसरी अवस्था (ईसा के 265 वर्ष बाद से ईसा के 589 वर्ष तक)

अनुवाद की इस अवस्था में कई बड़े अनुवादकों का योगदान रहा है। डाओ-एन (ताओ-एन), झि क्वियान, कुमारजीव, फा-हियान आदि अनुवादक इसी दौर में सक्रिय थे। चि साम्राज्य के हाओ-वू-ती के शासन काल में शू-ए-हान्मू-चाओ का अनुवाद हुआ। यह पूर्व स्थापित परम्परा का विस्तार कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में भी एक से अधिक अनुवादकों ने भाग लिया। महत्त्वपूर्ण यहां यह है कि यहां संस्कृत और चीनी, दोनों भाषाओं के विद्वानों ने अलग-अलग कार्य किए। कुमारबोधि ने संस्कृत पाठ पढ़ा। कुमारबोधि संस्कृत के विद्वान थे। बुद्धराक्षस और चू-फो-निएन ने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया। ये दोनों संस्कृत और चीनी भाषा के पारंगत थे। इनके द्वारा अनुदित ग्रंथ को सेंग ताओ और सेंग-जुइ ने चीनी भाषा में लिखा। ठीक यही परम्परा 383 ई. में देखने को मिलती है। यहां संघभूति ने संस्कृत पाठ किया। धर्मानदी को चीनी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। उन्होंने इसे संस्कृत में लिख दिया। लिखित भाषा में पुनरावृति की संभावना कम होती है। यह पहली बार हुआ था कि अनुवाद के पहले स्रोत भाषा को लिख लिया जाए। इसके अनंतर, बुद्ध राक्षस ने इसे चीनी भाषा में अनूदित किया। लेकिन उन्होंने केवल अनुवाद किया। लिखित भाषा के दूसरे विद्वान चीनी नागरिक भिक्षु मिन-चिह ने इसे चीनी भाषा में लिखा।

एक अन्य ग्रंथ पो-शु-मि-लुन के अनुवाद की कहानी और भी अलग ढंग की रही। संघभूति, धम्रनंदी और संघदेव ने संस्कृत ग्रंथ का पाठ किया। तीन विद्वानों के एकत्रित प्रयास ने स्रोत ग्रंथ की वास्तविकता को बनाए रखा। पहली बार एक चीनी नागरिक ने संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसके पहले जो प्रयास हुए थे उसमें यदि कोई चीनी अनुवादक था तो वह स्वयं पाठकर्ता भी रहता था। इस प्रकार, इस नये अनुवाद में चु-फो-निएन ने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसके बाद इसको लिखने का कार्य हुइ-संग ने किया। जैसा कि फा-हियान ने भी लिखा है, भारत में ग्रंथों का मौखिक रूप से ही संग्रहित किया जाता था। इसी परम्परा का अनुशीलन प्रथम अवस्था में दिखता है। इसमें कई बार पाठ करने वाला भूल भी जाता है। पुनरावृत्ति भी बहुत होती थी। इस दिशा में कुछ छूट जाने की संभावना अधिक होती थी। ऐसा कहा गया है कि ज्ञानप्रतिष्ठान के पाठ के समय संघदेव एक खंड भूल गए। फिर दूसरे विद्वान का सहारा लेकर इस कार्य को किया गया। पहली अवस्था के ही अनुवादक धर्मराक्षस के संबंध में यह कहा गया है कि वे भी कई बार भूल जाते थे। शांगेन में चिंग लू-चिंग का पाठ करते समय धर्मराक्षस कुछ अंश भूल गये। इसके पहले मार्च 273 से मार्च 284 तक उन्होंने अनुवाद कार्य नहीं किया था। जो भी कारण रहे हों, वे अनुवाद के समय बहुत कुछ भूल गये। अंततः उसका लिखित रूप ढूंढा गया और अनुवाद पूरा किया गया।

चौथी सदी तक आते-आते स्थिति बदलने लगी। चीनी भिक्षु ताओ-एन ने अनुवाद ब्यूरो स्थापित कर सर्वस्तिवाद के ग्रंथों का अनुवाद कार्य शुरू कराया। रूप और शैली को लेकर चर्चा ताओ-एन के साथ शुरू हुई। यह कई प्रकार से शब्दशः अनुवाद और मुक्त अनुवाद के बीच संवाद का समय था। स्रोत भाषा को प्रमुखता देने का आग्रह पहले से चला आ रहा था लेकिन हम देख चुके हैं कि धर्मराक्षस के समय संस्कृत का समानार्थी चीनी भाषा में नहीं मिलने पर ताओवाद के किसी शब्द को रख दिया जाता था। यही कारण है कि पिछले अनुवादकों पर उन्होंने अपने विचारों को थोपने का आरोप लगाया। उनके अनुसार इसका कारण विदेशी भाषा की वाक्यसंरचना की जटिलता और अर्थ भेद की भिन्नताएं हैं। उन्होंने अनुवादक की पांच सीमाओं का उल्लेख किया जिसके चलते गलतियां होती रही हैं-

1. स्रोत भाषा की दीर्घवृत्ताकार संरचनाको चीनी भाषा में उतारते समय अर्थ का अनर्थ होने की संभावना अधिक होती है।
2. विदेशी शब्दावली अज्ञात और बहुअर्थी है। अर्थ को बनाए रखने के लिए उसका चीनी समानार्थी खोजना कठिन है। इससे मुक्त होने के लिए कई बार शब्दों को बदल लिया गया है। यह भी हुआ है कि चीनियों को प्रिय लगने के लिए ग्रंथ में अनुवादकों ने कलात्मकता का सहारा लिया है और मूल कथ्य को किनारे कर दिया है।
3. चूंकि अनुवाद मौखिक रूप में हुए हैं, अनुवादकों ने पुनरुक्ति को महत्त्व दिया है। इसके चलते ग्रंथ में विकसित विचार को त्याग दिया गया है। यह ठीक नहीं है।
4. अनुवादकों ने व्याख्याओं की अनदेखी की है।
5. अनुवादकों ने बाद के वाक्य की व्याख्या को छोड़ दिया है। संवाद के विकास के लिए पहले के वाक्य का ज्ञान अनिवार्य होता है। इससे भी अनुवाद प्रक्रिया बाधित हुई है।

ताओ-एन 379ई. में शांगेन आ गये और उन्होंने सर्वस्तिवाद के ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। बौद्ध दर्शन के लगभग 41 ग्रंथ इनके द्वारा अनूदित किए गए हैं। ताओ एन के सिद्धांतों से झि क्वियान पूरी तरह असहमत थे। इसका कारण यह था कि ताओ एन का बल स्रोत भाषा पर नहीं था। उनके द्वारा स्थापित सिद्धांतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे शब्दशः अनुवाद की परम्परा के विरोधी थे। वे दूसरी परम्परा का आरंभ चाहते थे जिसे मुक्त अनुवाद की परम्परा कहा जाता है। झि क्वियांग की मांग सीधी प्रस्तुति को लेकर थी। इसका अर्थ यह नहीं कि झि क्वियान लिप्यांतरण के समर्थक थे। झू झियांगयान द्वारा किए गए अनुवाद की आलोचना करते हुए झि क्वियांग ने कहा कि अनुवादक चूंकि स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं में पारंगत नहीं है इसलिए उसने लिप्यांतरण किया है। स्रोत भाषा के शब्दों का सीधे-सीधे अनुकरण किया है। ताओ एन कहा करते थे कि हमने मूल भाषा से समानता बनाए रखने तथा चीनी व्यवहार से आत्मसात करने के लिए वाक्य क्रम को बदल दिया है।

झि क्वियान ने धर्मपाद (फा जू जिंग) की भूमिका में लिखा कि सुंदर शब्द विश्वसनीय नहीं होते हैं और विश्वसनीय शब्द सुंदर नहीं होते हैं। उन्होंने लोकाक्षिन द्वारा किए गए अनुवाद को अत्यधिक सरल और विदेशी ध्वनि से भरी हुई कहा

और उसकी आलोचना भी की। अतः झि क्वियान का बल सीधी प्रस्तुति पर था। वे बनावटीपन के विरोधी थे।

तीन उपायः

1. मूल ग्रंथ के साथ एकात्म होना चाहिए साथ ही चीनी वाक्य संरचना को ध्यान में रखते हुए यदि वाक्य परिवर्तन करना आवश्यक हो तो किया जाना चाहिए।
2. बुद्ध का ज्ञान और जनता का अज्ञान ज्ञात तथ्य है। अतः दोनों के बीच एकात्म होना चाहिए। चीनी जनता कलात्मकता को पसन्द करती है। संस्कृत में सरलता है। शब्दों का चुनाव इसी के अनुरूप किया जाना चाहिए।
3. बुद्ध के परिनिर्वाण के सैंकड़ों वर्ष बाद उनके मूल वचन का पहचान पाना कठिन है।

अर्थात् अनुवाद के दौरान शब्द या वाक्य परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार, यदि झि क्वियान को प्रथम उत्थान अथवा पहली अवस्था का उत्कर्ष कहा जा सकता है ताओ एन को दूसरी अवस्था का आरंभकर्ता कहना गलत नहीं होगा। यदि झि क्वियान भाषा को प्रमुखता देते हैं तो ताओ एन लक्ष्य भाषा के अनुरूप अनुवाद को व्यवस्थित करने के लिए प्रयासरत दिखते हैं। ताओ एन अनुवाद को संक्षिप्त अथवा विस्तृत करने के पक्ष में दिखते हैं। इसका भी प्रमाण मिलता है कि उन्होंने संस्कृत के 482 शब्दों को 195 चीनी शब्दों में सिमटा दिया।

झि क्वियान के द्वारा अनुवाद प्रक्रिया के दौरान अपने सहयोगियों को निर्देश देने की एक कहानी का उल्लेख बार-बार होता रहा है। अनुवाद समिति को उन्होंने निर्देश दिया कि वे पुनरावृति को दूर कर दें साथ ही स्रोत ग्रंथ की भाषा को ठीक कर दें। हुई शांग ने इसे यह कहते हुए नकार दिया कि लाओत्से के यहां भी पुनरावृत्ति और सपाटबयानी हुई है। गुरू के शब्दों को बदलना अनुचित होता है। इससे भी इन दोनों स्थितियों का अंतर स्पष्ट होता है।

कुमारजीव ने ताओ एन की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष बाद अनुवाद कार्य शुरू किया। इस महान अनुवादक के साथ अनुवाद की नयी परम्परा विकसित हुई। बड़े पैमाने पर अनुवाद कार्य किए जाने के लिए अनुवाद विभाग अनिवार्य हो गये। ये अनुवाद केन्द्र राजाश्रय में विकसित हुए। इसी के एक शिष्य ने मुक्त अनुवाद की परम्परा को स्थापित करने का कार्य किया। बहुत से अनुवाद केन्द्रों की स्थापना इस दौरान हुई। शी-मिंग पैवेलियन और शियो-याव बिहार कुमारजीव की अध्यक्षता में या-चिन साम्राज्य द्वारा स्थापित कराए गये। इसी समय लिउ संग राजवंश द्वारा नानकिंग में जेटवाना विहार की स्थापना गुणभद्र की अध्यक्षता में हुई। यह बौद्ध दर्शन के उत्कर्ष का काल है। इस समय पूरे चीन में यह दर्शन अपने उत्कर्ष पर पहुंच जाता है। इसी समय उत्तरी येइ राजवंश द्वारा बोधिरूचि के नेतृत्व में हुएन-यू-मंदिर की स्थापना की गयी। तिएन-पिंग-मंदिर की स्थापना नरेंद्रयश के नेतृत्व में उत्तरी ची राजवंश द्वारा हुई। इस दौर में बहुत से भारतीय भिक्षुओं का चीन में आगमन हुआ। राजाश्रय ने इस कार्य को तीव्र करने का कार्य किया। कुमारजीव इस काल के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुवादक हैं। ता-शिंग शान विहार की स्थापना येन-त्सांग के नेतृत्व में सुइ राजवंश के द्वारा स्थापित किया इन्हें राज्य द्वारा आर्थिक मदद मिली और परिणामस्वरूप लगभग 35 ग्रंथों का अनुवाद हुआ। अनुवाद के इस दूसरे दौर में यांत्रिक अनुवाद का स्थान सृजन लेने लगा। उन्होंने मूल संस्कृत शब्दों के स्थान पर चीनी भाषा के शब्दों को रखा। हीनयान और महायान दोनों ही चीन में उपस्थित हो चुके थे लेकिन इनके बीच का अंतर चीनी बौद्धों को अज्ञात था। कुमारजीव ने हीनयान के ग्रंथों को भी अनूदित करने का कार्य किया है। यहां से बौद्ध धर्म का चीनी संस्करण आरम्भ हुआ। अनुवाद ने भारतीय बौद्ध दर्शन को चीनी भाव और विचार में रंग दिया।

कुमारजीव ने नाम और अर्थ की समस्या को पहचाना और महत्त्वपूर्ण निर्णय भी लिए। उन्होंने पहले के अनूदित ग्रंथों का अनुशीलन किया और जहां नाम और अर्थ में तादात्म नहीं मिला, वहां उसे बदल दिया। जहां ध्वनि की समस्या थी, उन्होंने संस्कृत उच्चारण को देखते हुए शब्द को बदल दिया। यदि कोई चीनी शब्द नहीं मिला तो उसे संस्कृत शब्द से बदल दिया। यही कारण है ताओवाद के प्रभाव से बौद्ध दर्शन को मुक्त करने का कार्य कुमारजीव के द्वारा ही हुआ। यह मुक्त अनुवाद की परम्परा रही है।

कुमारजीव के सहयोगी और चीनी भाषा के प्रकांड विद्वान सेंग-जुइ ने स्रोत ग्रंथ केन्द्रित अनुवाद को लक्ष्य केन्द्रित बना दिया। अनुवाद अब लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप किया जाने लगा। उन्होंने अपने गुरू के सिद्धांत को विकसित करने का कार्य किया।

कुमारजीव ने माध्यमिक का अनुवाद 401 से 409 के बीच कभी किया। यह ग्रंथ आज भी चीन के संघों में सुरक्षित है। उन्होंने नागार्जुन की जीवनी का भी अनुवाद किया। इतना ही नहीं नागार्जुन के एक शिष्य आर्यदेव की जीवनी लिखने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। चतुःशतक इनके द्वारा अनूदित ग्रंथ है। इन्होंने इसका अनुवाद शत् शास्त्र नाम से किया। हुआन त्सांग ने इसका अनुवाद शत् शास्त्र वैपुलय नाम से किया और इस पर टीका भी लिखी। उनके पिता अप्रवासी भारतीय थे और माता कूच की राजकुमारी थी। कहना न होगा कि उनका विकास ही सांस्कृतिक विविधता के दौर में हुआ। यहीं उनकी शिक्षा भी हुई। यह हीनयान से प्रभावित स्थान था। इससे कुछ दूर खोटन में महायान का प्रभाव था। यहीं मोक्षला रहा करते थे जिन्होंने पंचविम्सति का अनुवाद किया था। लेकिन इससे उनके महायानवादी होने का प्रमाण नहीं सिद्ध होता है। इतना निश्चित है कि कुमारजीव के गुरू बुद्धमित्र यारकंड में रहते थे। दीर्घागम, मध्यागम आदि की दीक्षा बुद्धमित्र से ही उन्हें मिली थी। बाद के अध्ययन के लिए कुमारजीव कश्गर आ गये थे। यारकंड इसके बहुत निकट है। हुआन त्सांग भी इसी संभावना को स्वीकार करते हैं। यही सूर्य सोम रहते थे। जिससे कुमारजीव ने अन्वतप्त नागराज परीक्षा सूत्र की शिक्षा ली थी। और इसी के उपरांत उन्हें बौद्ध भिक्षु स्वीकार कर लिया गया था। उनके द्वारा अनूदित ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है। उनमें से सदधर्मपुंडरिक, चविम्सति, सुखावती व्यूह, विमलकीर्ति निर्देश आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का नाम लिया जा सकता है। ताओ येन का उल्लेख किया जा चुका है। उन्होंने लिखा था कि चीनी भाषा और भारतीय भाषा में एक बड़ा अंतर दोनों की प्रकृति को लेकर है। यदि एक भाषा की प्रकृति अमूर्तन की है तो दूसरी भाषा की प्रकृति तत्वविश्लेषण की रही है। अतः समस्या संतुलन स्थापित करने की है। कुमारजीव ने इसी संतुलन को स्थापित किया।

इस प्रकार, पांचवी और छठी सदी में स्थिति पूरी तरह से बदल गयी। इस दौर में यह देखा गया कि चीनी भिक्षुओं ने अपने धर्मग्रंथों को मूल भाषा में पढ़ने का प्रयत्न किया जिससे उनको दो भाषाओं पर नियंत्रण बढ़ा। दूसरा यह कि भारतीय अनुवादकों ने चीनी भाषा में अपनी दक्षता प्रदर्शित की। कुमार जीव के दो सहयोगी चीनी भाषा के प्रकांड विद्वान थे-शेंग चाओ और सेंग-जुई। कुमारजीव अपने सहयोगियों को दो-दो बार पाठ सुनाते थे। शब्दों का समानार्थी खोजा जाता था। पहले ही शब्दकोश बना दिया गया था। फिर भी, कलात्मक रूप पर चर्चा होती थी और तब, कहीं पाठ को स्वीकृति मिलती थी।

षडकर्मपुंडरीक नामक ग्रंथ के अनुवाद को उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है। इसी बीच एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना हुई। और इसका प्रभाव अनुवाद की प्रक्रिया पर पड़ा। कुमारजीव जब कुच में थे तब विमलाक्ष ने उन्हें विनय में दीक्षित किया था। विमलाक्ष शांगेन आ गये और उनकी मुलाकात कुमारजीव से हुई। कुमारजीव के साथ उनका आदान-प्रदान हुआ। बाद के दिनों में विमलाक्ष शाउशुन चले गये और वहीं उन्होंने चीनी जनता के बीच लोकप्रिय ग्रंथ शिशांग लू का अनुवाद किया। इस ग्रंथ की लोकप्रियता का आधार इसका आम बोलचाल की भाषा में सृजित होना है। गाओसेंग झियान ने तो यहां तक लिखा है कि इस ग्रंथ की लोकप्रियता का पता इस बात से चलता है कि लोगों ने इस ग्रंथ को अपने अनुरूप लिखना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि पेपर का दाम हीरे-जवाहरात की तरह बढ़ गया।

धर्मराक्षस और शिह-शिएन तीसरी सदी में बुद्ध के मूल विचारों को संप्रेषित करने के पक्ष में थे परन्तु उनका बल साहित्यिक पक्ष को बनाए रखने का भी था। भले ही इससे मूल पाठ और संप्रेषित अर्थ प्रभावित होता है। अर्थात् मूल संदेश को बनाए रखते हुए कलात्मकता पर बल देना उनका प्रयास था। शिह-शिएन ने प्रज्ञा परिमिता शब्द का अनुवाद मिंग-तू किया। इसका विरोध कुमारजीव के एक सहयोगी शंग-जूइ ने किया। उनका आरोप था कि कलात्मकता की चाह में कुंग-मिंग अर्थात् शिह-शिएन ने मूल अर्थ को भ्रमित कर दिया है। गलत भाषा के प्रभाव में वास्तविक उद्देश्य बाधित हुआ है।

10.3.3 तीसरी अवस्था (ईसा के 589 वर्ष से लेकर ईसा के 1100 वर्ष तक)

चीन में अनुवाद की दूसरी अवस्था तीसरी अवस्था का मार्ग तैयार करती है। तीसरी अवस्था तक आते-आते अनुवाद का सिद्धांत स्वीकृत हो जाता है। ताओ येन ने तीन बातों का उल्लेख किया था। पहली, लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा की प्रकृति का अंतर अनुवाद में बाधा पहुंचाता है। दूसरी यह कि अनुवाद में संदर्भ और उनसे जुड़े विचार का बोध अनिवार्य हुआ करता है। तीसरी और अंतिम बात यह थी कि प्राचीन रीतियों को नये सामाजिक संदर्भ में रखना कई प्रकार की समस्याओं को जन्म देता है। इनका निदान कुमारजीव और सेंग जुई ने अपने ढंग से किया। पंचविम्सति की

भूमिका में शेंग जुई ने लिखा है कि किस प्रकार कुमारजीव ने तकनीकी शब्दों की ध्वनि में सुधार किए हैं। उस पर विचार किया जा चुका है। इस तीसरी अवस्था में अनुवादकों ने अनुवाद समिति को विस्तृत कर इस समस्या से स्वयं को मुक्त कर लिया।

इस विस्तृत अनुवाद मंडल की स्थापना से अनुवाद को एक नई दिशा मिली। सुइ और त्सांग राजवंश के दौर में इसका विभाजन इस प्रकार था-

1. आई-च्शू अर्थात् मुख्य अनुवादक
2. आइ-या अथवा च्शुआन-यू अनुवादक जिसका कार्य विदेशी ग्रंथ का पाठ अथवा अनुवाद होता था।
3. शेंग-फान-आइ संस्कृत अर्थ की प्रामाणिकता को स्थापित करने वाला।
4. पाइ-शो जो अनुवादित ग्रंथ को चीनी भाषा में लिखता था।
5. शेंग आइ जो अनुवादति ग्रंथ को सत्यापित करता था।
6. जून-वेन मुख्य उद्देश्य अनुवादित ग्रंथ की साहित्यिक शैली को स्थापित करता था।
7. त्सांग-कन अथवा शिआओ-कन यह प्रूफ रीडर होता है।
8. शेंग-त्जू शब्द को सही करता था।

इस अवस्था की विशेषता यह रही है कि अब अनुवादक लक्ष्य भाषा का विद्वान हुआ करता था। इस दौर के लगभग सभी बड़े अनुवादक चीनी थे और चीनी और भारतीय संस्कृत भाषा के विद्वान भी थे। त्सांग साम्राज्य का समर्थन भी इनको मिला था। यही कारण है कि अनुवाद समितियों की व्यवस्था बहुत अच्छी थी।

इस दौर के दो अनुवादक हुआन-त्सांग और आइ-त्सिंग हरे हैं। हुआन-त्सांग संस्कृत और चीनी पर लगभग समान अधिकार रखने वाला अनुवादक था। हुआन त्सांग के नेतृत्व में यु हुआ पैलेस, त्जु येन टेंपल और हुंग फु टेंपल स्थापित किया गया। आइ त्सिंग के नेतृत्व में शिएन फु टेंपल स्थापित किया गया है।

येन त्सांग 557-610 ई. को भारतीय भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। उनका विचार था कि ग्रंथ के मूल अभिप्राय को बनाए रखना चाहिए। अंतः उन्होंने यह यह कहा कि ग्रंथ के मूलार्थ को बचाए रखने के लिए यदि अनलंकृत भाषा भी प्रयोग में लानी हो, तो लिया जाना चाहिए। उन्होंने अनुवादक के लिए आठ गुणों का होना अनिवार्य कहा-

1. अनुवादक को शांत, विश्वसनीय और धर्म के प्रति निष्ठावान होना चाहिए।
2. आध्यात्मिक कार्य के प्रति सचेत रहना चाहिए।
3. उसे त्रिपिटिक का ज्ञान होना चाहिए।
4. उसे अपने समय के साहित्य का भी ज्ञान होना चाहिए।
5. उसे सहनशील और पक्षपात रहित होना चाहिए।
6. धम्म का अनुयायी होना चाहिए।
7. संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य है।
8. रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान आदि का ज्ञान भी अनुवादक के लिए आवश्यक है।

परन्तु रूप के संदर्भ में विजय कुमारजीव की ही हुई। अन्यथा विलुप्त साहित्य को मूलार्थ को बचाते हुए पुनः सृजित करना आसान नहीं था। हुआन सांग ने ऐसे शब्दों का उल्लेख भी किया जिनका अनुवाद नहीं किया जा सकता है। ऐसे संस्कृत शब्दों को यथावत रखने का निर्णय उन्होंने लिया है-

1. वस्तुएं, जो चीन में नहीं होती थीं।
2. शब्द, जो गुणों से युक्त थे उदाहरण के लिए प्रज्ञा परिमिता

3. शब्द, जिनके लिए प्रचलित प्राचीन रूप को ही स्वीकार किया जा सकता है।

4. शब्द, सारगर्भित थे अथवा जिन में बहु अर्थी होने की अपार क्षमता थी।

5. शब्द जो गूढ़ थे।

10.3.4 अनुवाद सिद्धांत : मूल्यांकन

हमने यह देखा कि पहली अवस्था में अनुवाद सिद्धांत की दिशा निर्धारित नहीं हुई है। ताओ येन ने ठीक ही लिखा कि दोनों भाषाओं की प्रकृति अलग रही है। इधर यह पता चला है कि आरंभिक दिनों में अनुवाद संस्कृत के स्थान पर प्राकृतों अथवा पालि से भी हुआ। गांधारी प्राकृत खरोष्ठी में लिखी जाती थी और इसके चलते भी बहुत समस्याएं आई हैं। बाउचर ने दिखाया है कि किस प्रकार संस्कृत और गांधारी के उच्चारण को लेकर अनुवाद में गलतियां हुई हैं। जैसे कि बलन शब्द है। गलती से इसे बाल पढ़ लिया गया। बल से यह बाल हो गया। इसी प्रकार अन्य शब्दों का भी उल्लेख किया गया है। इस समय ताओवाद का प्रभाव भी समाज पर बहुत अधिक है और उसके चलते ताओधर्म के प्रचलित शब्दों को रखने की प्रवृत्ति दिखती है। संस्कृत में पाठ के आरंभ में पिछले पाठ का अंत रखने की प्रवृत्ति है। यह चीनी भाषा में नहीं है। अतः पुनरावृत्ति होने की संभावना अधिक है।

दूसरी अवस्था में झि क्वियान और ताओ येन के सिद्धांत अनुवाद सिद्धांत का एक नया रूप सामने लाते हैं। ताओ येन कहते हैं कि अनुवाद में विश्वसनीयता होनी चाहिए लेकिन उसे लक्ष्य भाषा से जुड़ी जन आकांक्षाओं का आदर करना चाहिए। इसलिए यदि वाक्यक्रम परिवर्तन आवश्यक हो तो उसे किया जाना चाहिए। हमें रूप और शैली पर बल देना चाहिए। अतः इस दूसरे दौर में लक्ष्य भाषा केन्द्रित अनुवाद सिद्धांत विकसित होता है और मुक्त अनुवाद सिद्धांत की नींव पड़ती है।

कुमारजीव का प्रसिद्ध कथन जिसमें उन्होंने लिखा कि अनुवाद कभी भी मूलग्रंथ के स्वाद को नहीं पा सकता है, यह दूसरे के द्वारा चबाए गए खाने को पुनः खाने जैसा है। इससे इसका स्वाद तो समाप्त हो ही गया होता है, बीमार हो जाने का खतरा भी होता है। इस प्रकार, कुमारजीव मूल ग्रंथ से चिपक कर बैठने के पक्ष में नहीं है। वे मूल ग्रंथ में चुनाव और संपादन को स्वीकार करते हैं। उनका उद्देश्य मूल ग्रंथ के मूल अभिप्राय को बचाए रखते हुए अनुवाद करना है। कुमारजीव के ही एक शिष्य शेंग जुई अनुवाद में कलात्मकता को स्थापित करने के प्रयास करते हैं। इस प्रकार, दूसरे दौर तक आते-आते अनुवाद सिद्धांत का रूप निश्चित हो जाता है। यहां तक कि ह्वेन त्सांग द्वारा यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि किन शब्दों के अनुवाद का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।

10.4 तिब्बत में बौद्ध दर्शन और अनुवाद सिद्धांत का विकास

तिब्बत में भी चीन जैसी तकनीक अनुवाद के लिए अपनायी गयी है। तिब्बत की कंजूर और तंजूर में कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं है जो किसी एक व्यक्ति के द्वारा किया गया है। इसमें भी अनुवादकों का एक दल शामिल रहा है। साधारणतः तीन व्यक्तियों के सम्मिलित होने का प्रमाण मिलता है। एक भारतीय विद्वान, एक तिब्बती लेखक और एक अन्य तिब्बती विद्वान जो प्रारूप की समीक्षा करते हुए उसे ठीक करता था। भारतीय विद्वान (खस्पा) अपने तिब्बती सहयोगी, जिसे लोत्सावा कहते हैं, को ग्रंथ का अर्थ समझाता था, लोत्सावा उसका अनुवाद कर शु शेन ग्यी लोत्सावा या प्रूफरीडर अथवा अनुवाद सुधारक को दे देता था।

तिब्बत के अनुवाद सिद्धांत की एक विशेषता शब्दकोश निर्माण की भी रही । कहना न होगा कि चीन और तिब्बत की अनुवाद प्रक्रिया के चलते बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत का विकास हुआ।

10.5 अनुवाद दान के रूप में

शैयांग शुई ने अनुवाद को दान के रूप में व्याख्यायित किया है। राजाश्रय देने वाले राज्य और शिक्षक प्राथमिक दानकर्ता हैं, तो अनुवादक प्राथमिक याचक कहे गये हैं। अनुवादक फिर द्वितीयक दानकर्ता बन जाते हैं तो लक्ष्य समूह द्वितीयक याचक हो जाता है।

10.6 सारांश

इस इकाई में हमने यह समझने का प्रयास किया कि बौद्ध दर्शन का विस्तार किस प्रकार हुआ और उसके विस्तार में अनुवाद की क्या आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति में बौद्ध अनुवाद की तीन अवस्थाओं को देखा जा सकता है। इस क्रम में चीन में बौद्ध दर्शन और अनुवाद की इन तीनों अवस्थाओं का विवेचन किया गया है। इसमें प्रयुक्त अनुवाद सिद्धान्तों का मूल्यांकन भी किया गया है। तिब्बत में बौद्ध दर्शन और अनुवाद सिद्धान्त के विकास के विषय में भी यहाँ आवश्यक चर्चा की गई है। यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि बौद्ध चिन्तन में अनुवाद किस प्रकार दान के रूप में सामने आता है।

10.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. बौद्ध अनुवाद सिद्धांत का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. बौद्ध अनुवाद चिन्तन के विभिन्न चरणों (विभिन्न अवस्थाओं) का परिचय दीजिए।
3. बौद्ध अनुवाद चिन्तन की तीसरी अवस्था के अनुवाद सिद्धांत का विवेचन कीजिए।
4. बौद्ध अनुवाद चिन्तन में कुमारजीव के योगदान की चर्चा कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
   (क) बौद्ध दर्शन का विस्तार और अनुवाद
   (ख) दान में अनुवाद
   (ग) ताओ-एन का अनुवाद विवेचन।

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Hazra, Kanai Lal, 1995, *The Rise and Decline of Buddhism in India*, New Delhi, Munshiram Manoharlal Publishers Private Limited.
2. Lamotte, Etienne, 1998, *History of Indian Buddhism*, Institut Orient Aliste, Louvain-La-Neuve.
3. Varma, Vishwanath Prasad, 1973, *Early Buddhism And Its History*, New Delhi, Munshiram Manoharlal Publishers Private Limited.
4. Warder, A.K., 1970, *Indian Buddhism*, Delhi, Motilal Banarsidass Publishers Private Limited.
5. Powers, John, 1995, *Introduction to Tibetan Buddhism*, New York, Snow Lion Publications, Ithaca, Boulder, Colorado.
6. Perera, H.R., 1968, *Buddhism in Sri Lanka, a Short History*, Sri Lanka, Buddhist Publication Society, Kandy.
7. Heirman, Ann and Bumbacher, Stephan Peter, (Eds.), 2007, *The Spread of Buddhism*, Boston, Brill, Leiden.
8. Zurcher, E., 2007, *The Buddhist Conquest of China, The Spread and Adaptation of Buddhism in Early Medieval China,* Brill, Leiden.

इकाई 11 आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 भारतीय अनुवाद चिन्तन का संक्षिप्त परिचय

11.3 आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन

11.4 प्रमुख आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धांतकार और उनके अनुवाद सिद्धान्त

- 11.4.1 ए.के. रामानुजन का अनुवाद सिद्धान्त
- 11.4.2 सुजित मुखर्जी का अनुवाद सिद्धान्त
- 11.4.3 गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक का अनुवाद सिद्धान्त
- 11.4.4 हरीश त्रिवेदी का अनुवाद सिद्धान्त
- 11.4.5 तेजस्विनी निरंजना का अनुवाद सिद्धान्त

11.5 अन्य अनुवाद सिद्धान्तकार और उनका अनुवाद चिंतन

11.6 सारांश

11.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय अनुवाद चिन्तन की पृष्ठभूमि को जान सकेंगे।
- आधुनिक भारतीय अनुवाद चिंतन से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धान्तकारों के विचारों को समझ सकेंगे।
- कुछ अन्य अनुवादक चिन्तकों के विचारों से परिचित होंगे।

11.1 प्रस्तावना

अनुवाद अध्ययन की स्वतंत्र सत्ता और स्वायत्त अनुशासन के रूप में मान्यता के साथ-साथ उसकी प्रकृति में अन्तर्निहित अन्तरअनुशासनात्मकता (Interdisciplinarity) के कारण आज जहां अनुवाद अनेक ज्ञानात्मक अनुशासनों में एक महत्त्वपूर्ण घटक बन गया है, वहीं वह अनेक अनुशासनों को जोड़ने और उनके मध्य अन्तःक्रिया स्थापित करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम ही नहीं अपितु एक कारक बन गया है। वैश्विक परिदृश्य में भूमण्डलीकरण के प्रभाव के कारण भाषा, ज्ञान और भौगोलिक सीमाओं का संकुचन होने लगा है औरवे तेजी से एक दूसरे के निकट आने लगी हैं। पारस्परिक साहचर्य की यह स्थिति अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के कारण तो हुआ ही है यह बढ़ते प्रौद्योगिकीय विकास तथा सूचना क्रांति के फैलाव के कारण भी संभव हुआ है। सूचना के विस्तार ही नहीं उसकी क्रांतिकारी प्रकृति के निर्माण में भी अनुवाद ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और अभी भी तेजी से उस भूमिका को वह निभा रहा है।

ज्ञानात्मक अनुशासनों की पारंपरिक दीवारों के टूटने तथा नए ढंग से विभिन्न विषयों पर विचार करने में अनुवाद की सहायता ली जा रही है। अनुवाद एक पद्धति या प्रक्रिया और उत्पाद दोनों ही स्तरों पर अपनी पहचान बनाने में सक्षम हुआ है। 21वी शताब्दी में अनुवाद का भविष्य काफी उज्जवल होगा, ऐसी सिद्धान्तकारों और विमर्शकारों की मान्यता है। स्वयं अनुवाद के विषय में भी न केवल अनुवाद चिन्तकों की अपितु अन्य ज्ञानात्मक अनुशासनों से जुड़े विशेषज्ञों की धारणा भी बदली है। अनुवाद के कार्य और उद्देश्य को लेकर भी पुनर्विचार किया गया है और लगातार इस पर विचार हो रहा है। अब वह केवल भाषिक अन्तरण तक ही सीमित नहीं है अपितु भाषा विज्ञान की परिधि से बाहर निकलकर सांस्कृतिक अन्तरण ही नहीं वि-उपनिवेशीकरण (De-Colonization) का एक प्रमुख उपकरण बनकर भी उभरा है। अब शब्दों, वाक्यांशों और पदबंधों के अनुवाद की समस्या, मूल पाठ के प्रति निष्ठा जैसी बातों से अनवुाद की सैद्धान्तिकी बहुत आगे निकल गई है। अब वह संस्कृतियों के अनुवाद की वैचारिकी निर्मित कर रही है। उसे अब वि-उपनिवेशीकरण के उपकरणों की तलाश है। यही नहीं अ बवह अस्मिताओं के अनुवाद पर भी विचार करने लगी है। भारतीय समाज एवं राष्ट्र-राज्य की बहुलता तथा बहुभाषिकता एवं बहुसांस्कृतिकता की स्थिति को देखते हुए अनुवाद के अनेक आयामों से परिचित होना हमारे लिए बहुत उपयोगी होगा।

प्रस्तुत इकाई में आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन से हम परिचित होने का प्रयास करेंगे।

11.2 भारतीय अनुवाद चिन्तन का संक्षिप्त परिचय

प्रायः यह कहा जाता है कि भारतीय अनुवाद चिन्तन की कोई व्यवस्थित परम्परा नहीं है। यदि कुछ अनुवाद कार्य हुए भी तो वर्त्तमान अर्थ में उन्हें अनुवाद की सीमा में शामिल करने में हमें अतिव्याप्ति का ही सहारा लेना होगा। न तो वहाँ अनुवाद की सैद्धांतिकी निर्मित हुई न ही अनुवाद की स्वतंत्र सत्ता की बात की गई। यही नहीं अनुवाद कार्यों का सही ढंग से दस्तावेजीकरण (Documentation) भी नहीं किया गया। ये बाते प्रायः पूर्वग्रह वश भी कही जाती हैं ओर जानकारी के अभाव में भी। दूसरी ओर यह भी सही है कि पश्चिमी अनुवाद चिन्तन की तुलना में हमारी अनुवाद-चिन्तन परम्परा न तो उतनी सुदृढ़ है, न ही उतनी सिद्धान्तोंन्मुख। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि हमारी अनुवाद की अवधारणा भी पश्चिम से भिन्न है। उदाहरण के लिए हमारी परम्परा में मूलकृति से प्रेरित प्रभावित एवं उसके तादाम्य में लिखी रचनाओं को भी अनुवाद नहीं अपितु स्वतंत्र कृति समझा गया। इसलिए उनका उल्लेख स्वतंत्र कृति के रूप में हुआ अनुवाद के रूप में नहीं। जिसे हम पुनर्सृजन (recreation), अनुसृजन (trans-creation) या अनुकूलन (adaptation), या विनियोगीकरण (appropriation) आदि नामों से जानते हैं अथवा जिसे एन्द्रे लेफेवेयर पुनर्लेखन (rewriting) कहते हैं वह हमारी साहित्यिक परम्परा में भरा पड़ा है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस', कृतिवास 'रामायण', कंभन रामायण, नामदेव की रचनाएं आदि अपने मूल स्रोतों से जुड़कर भी स्वतंत्र सत्ता ग्रहण कर चुकी हैं। उन्हें अनुवाद कहना उनकी मौलिकता एवं रचनाकारों की प्रतिभा का अपमान करना होगा। नवीन प्रसंगों की उद्भावना, रचना के प्रति सर्वथा नया दृष्टिकोण या व्यवहार (treatment) काल-परिवेश के अनुरूप लोकहित से जोड़ना तथा जन मानस के अनुरूप प्रस्तुत करना उनकी स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता का प्रमाण है।

पश्चिम और भारतीय अनुवाद चिन्तन के मध्य एक अन्य महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि भारत में अनुवादकों ने अपनी व्यावहारिक अनुवाद प्रक्रिया का सैद्धांतिक विवेचन करने का प्रयास प्रायः नहीं किया। यहाँ तक कि उनके व्यावहारिक अनुभव भी कहीं व्यवस्थित रूप में सामने नहीं आते। प्राचीनकाल में बौद्ध अनुवाद चिन्तकों के यहाँ अनुवाद के व्यावहारिक अनुभव का विवरण मिलता है। भारतीय और पश्चिमी अनुवाद परम्परा में एक अन्य महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि भारत में अनुवाद प्रायः सामुदायिक कार्य के रूप में किया जाता रहा है। यह सामूहिक बोध और ग्रहण का एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। प्राचीन और मध्यकाल में धार्मिक और राजकीय प्रयोजनों से कराए गए अनुवाद कार्य इसी तरह के हैं। इसके विपरीत पश्चिम में अनुवाद प्रायः वैयक्तिक उद्यम के रूप में किया जाता रहा है।

भारत में अनुवाद वर्त्तमान अर्थ में या समकालीन समझ के अनुरूप पाश्चात्य अर्थ में नहीं समझा गया। उस रूप में इसकी कोई व्यवस्थित परम्परा भी नहीं मिलती। यहाँ अनुवाद भाष्य, टीका आदि के रूप में मौजूद है। भारत में अनुवाद की अत्यन्त सुदृढ़ और सुव्यवस्थित परम्परा न मिलने का एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि भारत में मौखिक परम्परा के माध्यम से भी अभिव्यक्ति होती रही है। यह मौखिक परम्परा बहुत मजबूती से पीढ़ी दर पीढ़ी अन्तरण करती रही है।

अनुवाद की परम्परा को खोज पाने में कठिनाई का एक अन्य कारण यह भी रहा है कि भारत में एक तो रचना या सृजन के संरक्षण के प्रति उदासीनता भी रही है और उनको संरक्षित करने में भौगोलिक परिस्थितियां भी बाधक रही है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय साहित्य और अनुवाद से जुड़ी अनेक कृतियां विदेशों में खोजी गईं। इन सबके बावजूद भारतीय अनुवाद के पूर्वाधुनिक परिदृश्य को संक्षेप में रखना जरूरी होगा।

सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों और उसमें प्राप्त अभिलेखों को अभी तक नहीं पढ़ा जा सका है। इसका कारण यह है कि जिस लिपि में वे लिखे गए उसे नहीं समझा जा सका। ऐसा माना जाता है कि आर्यों और देशज लोगों के मध्य संघर्ष के बाद आर्यों ने अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के लिए वेदों की रचना की। स्वयं 'ऋग्वेद' में भी द्रविड़ भाषा के प्रभाव का परिचय मिलता है। सबसे बाद में लिखे गए 'अथर्ववेद' में तो अनार्यो के रीति-रिवाजों, खान-पान और भाषाई और परिवेश का स्पष्ट रूप से पता चलता है। (Routledge Encyclopedia of Translation Studies Ed. By Mona Baker, 1998, P. 450 (New York))

विद्वानों ने अनुवादक शब्द तो नहीं पर उसका समानार्थी शब्द कौटिल्य के अर्थशास्त्र (4 शताब्दी ई.पू.) में खोजा है। इसका अर्थ यह है कि उस समय भी किसी न किसी रूप में अनुवाद कार्य होता था।326 ई.ईपू. में सिकन्दर के भारत पर आक्रमण तथा यूनानी दूत मेगस्थनीज के भारत प्रवास के समय से ही अनुवाद की लिखित परम्परा मिलती है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि मेगस्थनीज सिकन्दर के उत्तराधिकारी और मौर्य दरबार में रहने वाले सेल्यूकस का राजदूत था। चन्द्रगुप्त और कनिष्क के काल से ही भारतीय और यूनानी चिकित्सा, खगोलशास्त्र, नाटक आदि के मध्य संवाद के प्रमाण मिलते हैं।

महाबीर और गौतमबुद्ध के दार्शनिक विचारों का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ। इनमें विशेषतः बौद्ध अनुवाद परम्परा काफी मजबूत रही। इसका विस्तार चीन और जापान में भी हुआ। बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद सामूहिक अनुवाद पद्धति से होता था। बौद्ध दर्शन की रचनाएं पालि में मिलती हैं। जिनका अनुवाद श्रीलंका में बुद्ध के निर्वाण के 520 वर्षों बाद मिला। इस विस्तार में जाना यहाँ अभीष्ट नहीं है। इसका विस्तृत परिचय आपको स्वतंत्र इकाई में मिलेगा।

'रामायण' ओर 'महाभारत' जैसी कालजयी रचनाएं भारतीय साहित्य ही नहीं विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। इनके अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हुए। मूलतः ये रचनाएं संस्कृत में लिखी गई थीं। इसके अतिरिक्त पुराणों के अनुवाद संस्कृत से अन्य क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं में हुए। यही नहीं विष्णुशर्मा कृत 'पंचतंत्र' के अनुवाद फारसी तथा अरबी भाषाओं में हुए। ये कार्य 687वीं शताब्दी तक हो चुके थे। बगदाद के खलीफा अलमंसूर ने जो अनुवाद परिषद् बनाई थी उसमें खगोल विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा गणित संबंधित कृतियों के अनुवाद की परियोजना रखी गई। अलमंसूर का समय 710-75 ई. माना जाता है।

'तोलकप्पियम' आदि तमिल रचनाएं अनुवाद कही जाएंगी। मध्यकाल में मुहम्मद गोरी, इब्राहिम लोदी, दाराशिकोह, अकबर आदि के कार्यकाल में अनुवाद गतिविधियां बड़ी तेजी से जारी रहीं। स्वयं दाराशिकोह ने 50 से अधिक उपनिषदों का अनुवाद किया। ये सभी अनुवाद संस्कृत से फारसी भाषा में किए गए। अकबर ने रामायण और महाभारत के अनुवाद कराए। मुल्ला बदायूंनी के अनुवाद का उल्लेख करना आवश्यक है।

मध्यकाल में अनुवाद अनुसृजन या पुनर्सृजन के रूप में बड़ी संख्या में सामने आया। भक्ति के अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर लेने के कारण भक्ति की यात्रा दक्षिण से उत्तर की ओर हुई। इस यात्रा में दर्शन, विचार और भाषा की विशेषताओं की भी यात्रा हुई। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, भगवतगीता, वैदिक साहित्य का देशी भाषाओं में पुनराख्यान हुआ जिसे हम अनुसृजन एवं अन्तरण के रूप में परिभाषित करते हैं। तुलसीदास की हिन्दी रचना 'रामचरितमानस', नामदेव की रचना गीता का मराठी अनुवाद ही कही जाएंगी।

अंग्रेजों के आगमन के कारण अनुवाद की राजनीति का नया आयाम सामने आता है। यह सही है कि भारतीय कालजयी साहित्य के, विशेषतः संस्कृत साहित्य के, अनुवाद का एक उपनिवेशवादी एजेण्डा था जो स्पष्टतः भारत को राजनीतिक रूप से प्रभावी तरीके से गुलाम बनाना तथा औपनिवेशिक शासन को सुगम बनाया था। इसलिए उन्होंने रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, अभिज्ञान शाकुंतलम् जैसी रचनाओं का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कराया। इस राजनीति की

असलियत को एडवर्ड सईद ने 'ओरियण्टलिज्म' (orientalism) तथा तेजस्विनी निरंजना ने अपनी रचनाओं के माध्यम से बड़ी स्पष्टता से सामने रखा है। लेकिन इस राजनीति के बावजूद मैक्समूलर आदि जर्मन दार्शनिकों तथा विलियम जोंस जैसे अंग्रेजों के प्रयासों की इस हद तक तो सराहना करनी ही चाहिए कि उन्होंने भारतीय साहित्य को विश्व परिदृश्य पर सामने रखा। विश्व को भारतीय साहित्य से परिचित होने का अवसर मिला। यद्यपि अनुवाद अपनी राजनीति से किए गए तथा उसकी मनमानी व्याख्या भी की गई। यह भी सही है कि विलियम जोंस तथा केरी आदि के निहितार्थ जहाँ एक ओर यूरापीय शासन को सुदृढ़ बनाने तथा ब्रिटेन की भारत पर दासता मजबूत करने और उन्हें सांस्कृतिक रूप से अपने लिए उपयोग करने की कोशिशों का नतीजा थे वहीं दूसरी ओर धर्मान्तरण और ईसाई मिशनरियों के उद्देश्यों को पूरा करना था। तेजस्विनी निरंजना ने विलियम जोंस, केरी आदि के निहितार्थ का बड़ी स्पष्टता से विवेचन अपने सुप्रसिद्ध लेख 'Translation, Colonialism and Rise of English' में किया है। यहां यह भी जोड़ना उपयुक्त होगा कि मैकाले के शिक्षा के उद्देश्य के अनुरूप ही जोंस और केरी के भी अनुवाद के उद्देश्य थे।

लेकिन इन सबके बावजूद अनुवाद की दृष्टि से अंग्रेजी शासनकाल के 150 वर्ष से अधिक का समय बहुत घटना बहुल माना जाएगा 1783 में विलियम जोंस के कलकत्ता की सुप्रीमकोर्ट की पीठ के जज के रूप में कार्यभार ग्रहण करने के लिए भारत आने से लेकर स्वतंत्रता मिलने तक किसी न किसी रूप में अनुवाद प्रमुख वैचारिक कार्यवाही बन गया। एशियाटिक सोसायटी की स्थापना और उसके बाद के अनुवाद प्रयत्नों का रेखांकन किया जाना उचित है। इस प्रकार आधुनिककाल के पहले अनुवाद की पृष्ठभूमि को हम स्वतंत्रता के पूर्व का काल मान सकते हैं यद्यपि आधुनिक से पहलेके काल को प्रवृत्तियों की दृष्टि से देखने पर जो निष्कर्ष सामने आते हैं वे अभी भी अनुवाद में जिस सांस्कृतिक मोड़ (Cultural Turn) की बात की जाती है, उसकी दृष्टि से भिन्न दिशा में ले जाते हैं। आधुनिकता को स्वतंत्रता के साथ जोड़ना भी सही नहीं होगा क्योंकि राजनीतिक रूप से भारत भले ही स्वतंत्र हुआ हो 1947 में किन्तु आधुनिक होने की प्रक्रिया को पूंजीवाद के विस्तार के साथ 12वीं शताब्दी और भक्तिकाल से जोड़ा जाने लगा है। अनुवादकी दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति का विन्दु महत्त्वपूर्ण हो सकता है क्योंकि स्वातंत्त्योत्तर कालीन अनुवाद का इतिहास मुख्यतः विउपनिवेशीकरण (Decolonization) का इतिहास रहा है।

अब हम आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन का परिचय प्राप्त करेंगे।

11.3 आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन

भारतीय अनुवाद चिन्तन की सीमा भी कह सकते हैं और उसकी विशेषता भी कि व्यावहारिक अनुवादक अनुवाद प्रक्रिया के अनुभवों को वैचारिक स्वरूप प्रदान करने से बचता रहा है। इसीलिए अनुवाद की भारतीय सैद्धांतिकी व्यवस्थित रूप से सामने नहीं आ पाई है। बौद्ध अनुवादको ने अनुवाद के कुछ सूत्र भले ही दे दिए हों किन्तु पूरी प्रक्रिया का विवेचन नहीं मिलता। इसीप्रकार मध्यकाल में हुए अनुवादों को भी सैद्धांतीकृत करने का प्रयास नहीं हुआ। वर्त्तमान समय में भी विपुल मात्रा में अनुवाद हो रहे हैं पर उनका सैद्धांतिक विवेचन या उस प्रक्रिया का, उस अनुभव का तथा अनुवाद के दौरान भाषिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध (Resistance) का समाधान अनुवादक ने किस प्रकार किया है, उसका विवेचन नहीं मिलता। जब यह बात भारतीय सन्दर्भ में यहां कही जा रही है तब इसका अभिप्राय यह है कि हम पश्चिम से यदि तुलना करते हैं तो वाल्टर वेंयामिन, ब्लादीमर नोवाकोव, एजरा पाउण्ड, नायडा से लेकर लेफेवेयर आदि तक सबने अनुवाद प्रक्रिया, पद्धति तथा अनुवाद की कठिनाईयों को अपने व्यावहारिक अनुवाद के अनुभवों के आलोक में विवेचित किया है। यहां स्वतंत्रता के बाद तथा स्वतंत्रता के पहले अनुवाद के जितने उदाहरण मिलते हैं उन सभी में अनुवाद प्रक्रिया तथा वैचारिकी के प्रमाण लगभग नहीं है। यह सीमा एक स्तर पर विशेषता इसलिए बन जाती है कि भारतीय अनुवादक अपने व्यक्तित्त्व को उतना आरोपित भी नहीं करना चाहता, दूसरे वह अपनी प्रतिभा तथा अनुवाद कार्य के दौरान तात्कालिक सूझबूझ से अनुवाद की समस्याओं तथा अवधारणा और भाषा के स्तरों पर आने वाले अवरोधों, लेफेवेयर के शब्दों में Conceptual & Lexical Grids, का समाधान करने की कौन सी रणनीतियां बनाता है वह उसे एक सार्वभौमिक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करने से बचने की कोशिश करता है। यह भी संभव है कि वह अनुवाद की उन बारीकियों में जाए बिना मूलपाठ के आशय को लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करना ही अपना अभीष्ट समझता हो।

लेकिन स्वतंत्रता के बाद इतिहास के अध्ययन की दृष्टियों में हुए बदलाव के साथ अनुवाद की अवधारणा और उसके स्वरूप तथा सरोकार में भी परिवर्तन हुए। दुनिया भर के देशों और समाजों ने अपने इतिहास को फिर से समझने तथा

सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया जिसके मूल में राजा या शासक नहीं अपितु जनता को रखकर उसे इतिहास का मुख्य विषय बनाया गया। इस परिवर्तित इतिहास-दृष्टि ने विशेषतः उपनिवेश रहे देशों को अपने इतिहास को फिर से समझने का अवसर दिया। इस प्रक्रिया में इन देशों ने अपनी संस्कृति, अपने इतिहास तथा अतीत संबंधी लेखन और विवरण को तो देखने का उन पर नए सिरे से विचार का अवसर दिया। इसके साथ ही इन देशों ने अपने साहित्य पर भी पुनर्विचार किया। उसकी समकालीन सन्दर्भों में प्रासंगिकता खोजी जाने लगी। इसी क्रम में उपनिवेशकाल में हुए अनुवाद कार्यों की राजनीति की भी पड़ताल की गई।

इस पूरी प्रक्रिया में अनुवाद को भाषिक अन्तरण, शब्द और अर्थ की समानता से बहुत आगे एक सांस्कृतिक रूपान्तरण की कार्रवाई माना गया और विश्लेषण में यह पाया गया कि उपनिवेशकाल में जिस रणनीति के तहत अनुवाद किए और कराए गए वह राजनीतिक वर्चस्व के साथ-साथ सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश थीं इसी को उपनिवेशीकरण के व्यापक परिदृश्य का उपकरण मानते हुए विउपनिवेशीकरण के एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा है। अब अनुवाद विमर्शों के दायरे तक फैला गया है। भारत जैसे बहुभाषी, संस्कृति बहुल और वैविध्यपूर्ण देश में अनेक प्रकार की अस्मिताएं (Identities) भी मौजूद है। इसलिए आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन इन विमर्शों विविधताओं के अनुवाद की समस्याओं और संभावनाओं तथा सीमाओं पर भी विचार करता है।

विगत लगभग दो दशकों से भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के गति पकड़ने के साथ अनुवाद की भूमिका का विस्तार तेजी से हुआ है। विश्व स्तर पर अनुवाद की स्वतंत्र अनुशासन के रूप में उपस्थिति ने भी भारतीय अनुवाद परिदृश्य को प्रभावित किया हैं अनुवाद की जरूरत तो भारत में बढ़ी ही उसकी शक्ति को भी समझा जाने लगा है। सबसे बड़ी बात भारतीय अनुवाद परिदृश्य के आधुनिक सन्दर्भ में यह कही जा सकती है कि इसमे ज्ञान का प्रचार-प्रसार तो किया ही; उसका लोकतंत्रीकरण भी किया लेकिन उससे भी बड़ी बात यह कि इसने एक भाषा से एक अन्य भाषा में अनुवाद करने के बजाय विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद को प्रस्तावित किया। यद्यपि यह भी सही है कि भूमण्डलीकरण की अनेक विसंगतियों में से एक यह भी है कि अब भाषिक वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा है और सारे संप्रेषण एक-दो भाषाओं तक सिमट कर रह गए हैं। अनुवाद भी एक ही भाषा में हो रहे हैं। यह ज्ञान के केन्द्रीयकरण की स्थिति है जो एक स्तर पर चिन्ताजनक भी है।

इन सभी प्रश्नों को आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन विभिन्न कोणों से सामने लाने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तकों ने प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुवादकों की चर्चा के माध्यम से भी न केवल उन विशिष्ट स्थितियों के रेखांकन और उनकी सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास किया है अपितु उनको नए सन्दर्भ भी दिए हैं।

अगले खण्ड में हम प्रमुख आधुनिक भारतीय अनुवाद चिंतकों के विचारों से परिचित होंगे। भारतीय भाषाओं में अनुवाद करते समय अनुवाद प्रक्रिया के विषय में अनेक अनुवादकों ने विचार किया है। यद्यपि कुछ ने महत्त्वपूर्ण अनुवाद किए हैं पर अनुवाद के सन्दर्भ में अपना मत नहीं व्यक्त किया है इनमें प्रमुख हैं रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु आदि। जिन अनुवादकों ने अनुवाद के साथ अनुवाद पर अपने विचार भी व्यक्त किए हैं जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी है उनमें दिलीप चित्रे (मराठी से अंग्रेजी में तुकाराम के अनुवाद), हरिवंशराय बच्चन, रघुवीर सहाय, (शेक्सपीयर के अनुवाद) रांगेय राघव जबकि अनुवाद के सन्दर्भ में सुविस्तृत विवेचन ए.के. रामानुजन, गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक, तेजस्विनी निरंजना, हरीश त्रिवेदी, होमीभाभा, गणेशदेवी, सुजित मुखर्जी आदि ने किया है। इनमें से कुछ के विचारों को अगले खण्ड में प्रस्तुत किया जा रहा है।

11.4 प्रमुख आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धान्तकार और उनके अनुवाद सिद्धान्त

11.4.1 ए.के. राजानुजन का अनुवाद सिद्धान्त

ए.के. रामानुजन स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। कवि, विचारक, अनुवादक एवं अनुवाद-चिन्तक के रूप में उनके उल्लेखनीय योगदान का रेखांकन निश्चय ही किया जाना जाहिए। अंग्रेजी, कन्नड़ एवं तमिल भाषाओं में उन्होंने स्वयं रचना की तथा सहयोगी लेखकों के प्रयास से मलयालम, तमिल तथा मराठी भाषाओं में उनकी रचनाएं

आईं। इस प्रकार उन्होंने भारतीय साहित्य के बृहत्तर क्षेत्र को संबोधित किया। 1950 से 1990 तक उनका लेखनकाल भारतीय साहित्य एवं अनुवाद को समृद्ध करने के लिए जाना जाएगा। उनके लेखन एवं अनुवाद कार्य की विशेषता यह है कि वह भक्ति साहित्य रामायण के विभिन्न अनुवाद, तमिल दरबारी साहित्य, लोकगाथा तथा जनश्रुतियों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त होता है जबकि उनका सृजनात्मक लेखन कविता एवं कथा-साहित्य उत्तर औपनिवेशिक परिवेश का साक्ष्य है।

उनकी प्रमुख कृतियां हैं - Poems of love and war. The Interior Landscape, The oxford Anthology of Modern Indian Poety (Delhi, OUP, 1994 Ed. A.K. Ramajujam & V. Dharwarkar) when God is a customer: Telgu tesan songs by ksetreya and others (Berkely University of California Press, 1994, Eds & Trans. AKR, VN Rao & D. Shulman) The collected poems of A.K. Ramanujan, The collected Essays of A.K. Ramanujan (Ed. Vinay Dharwarkar)

अनुवाद के सन्दर्भ में उनकी स्पष्ट धारणा है कि वह मूलपाठ के भाव की रक्षा करें। उसकी दोहरी जिम्मेदारी होती है। इसीलिए जहां एक ओर वे यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि, 'A translator is an artist on oath' He has a double allegiance, indeed, several double allegiance. All too familiar with the rigors and pleasures of reading a text and those of making another, caught between the need to express himself and the need to represent another, moving between the two halves of one brain, he has to use both to get close to the 'originals'. He has to let poetry with without allowing scholars —to then his very compromises may begin to express a certain fidelity and may suggest what he can not convey. (Poems of Love & War)

उपर्युक्त उद्धरण में जहां एक ओर रामानुजन अनुवादक की मूलपाठ के प्रति निष्ठा के प्रश्न उठाते हैं वहीं दूसरी ओर वे अनुवादक के मुखर व्यक्तित्व की बात भी करते हैं। रामानुजन के अनुवाद सिद्धान्त के निष्कर्ष को विनय धारवड़कर इन शब्दों में व्यक्त करते हैं 'In order to fultie the reader's expectations, a translator has to bubmit to three concomitant, conflicting norms; textual fidelity, aesthetic satisfaction and pedagogic utility'. (Post colonial translation: Theory and practice, Ed. Harish Trivedi, Susan Bass nett, Routledge, 2000, P. 121)

रामानुजन का लेखन महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ विवादास्पद भी रहा है। उनका बहुचर्चित निबन्ध 'Three Hundred Ramayanas' रामायण के विभिन्न संस्करणों की प्रस्तुति के साथ-साथ उनकी लौकिक व्याख्या के कारण भी चर्चा में रहा है।

रामानुजन के लेखन और कन्नड़ भक्ति साहित्य के अनुवाद की रणनीति एवं राजनीति को लेकर भी प्रश्न किए गए। तेजस्विनी निरंजना ने अपनी पुस्तक 'Siting Translation' में वाल्टर वेंयामिन तथा दरीदा के साथ जोड़कर रामानुजन की अनुवाद संबंधी मान्यताओं की सीमाएं रेखांकित की। इनमें विशेष रूप से कन्नड़ के 'वचन' साहित्य (Vacanas) के अनुवाद में उन्हें रामानुजन की भक्ति साहित्य की मान्यताओं से असंतोष हैं जब वे 'speaking of Sita' के Introduction में कहते हैं कि 'Bhakti Attitudes were result of early Christian Influence' उन्हें इस बात पर भी आपत्ति है कि भक्तिकाव्य (वचन साहित्य) गहरे अर्थ में वैयक्तिक रचनाएं हैं जिनमें व्यक्तिगत संवाद की भाषा का प्रयोग हुआ है। ;They are Deeply personal poems they use the language of personal conversation) (siting translation P. 181) यद्यपि विनय धारवड़कर ने उपर्युक्त उद्धृत लेख में रामानुजन के पक्ष में तर्क दिए हैं।

कुल मिलाकर रामानुजन के अनुवाद चिन्तन को आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन में उल्लेखनीय योगदान माना जा सकता है।

11.4.2 सुखित मुखर्जी का अनुवाद सिद्धांत

सुजित मुखर्जी भारतीय अनुवाद अध्ययन के आधुनिक परिप्रेक्ष्य को महत्त्वपूर्ण दिशा देने में अपने विशिष्ट योगदान के लिए जाने जाते हैं। वे अनुवाद को नवलेखन (New writng) के रूप में प्रस्तावित करते तथा अनुवाद को खोज (Discovery) मानते और उसे प्रति लाभ या समुत्थान (Recovery) की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

सुजित मुखर्जी का व्यक्तित्त्व बहुआयामी है - एक अध्यापक आलोचक, अनुवादक तथा सम्पादक के रूप में उनके कार्य सराहे गए हैं। पेंसुलवेनिया विश्व विद्यालय के फुल ब्राइट स्कालर रहे सुजित मुखर्जी ने वहीं से अपनी डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी। पटना और पुणे विश्वविद्यालयों में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन किया, वे भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फेलो तथा विस्कोविन विश्वविद्यालय मेडिसन के विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे हैं

सुजित मुखर्जी किसी रचना के अनेक स्तरीय पाठ का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि एक सामान्य पाठक रचना को अपने अर्थग्रहण के लिए समझता है और उसका पाठ निम्नतम स्तर का होता है इसे वाक् स्तरीय (Hermetic) कहा जा सकता है क्योंकि इसमें पाठक या बोधक (Exegesis) के स्तर पर किया जाने वाला पाठ मध्यम स्तर का होता है जिसे भाष्यपरक (Hermeneutic) कहा जा सकता है। उस सीमा तक यह Hermeneutic है जहां तक पाठक को ये संप्रेषित करना होता है और इसका प्रमाण देना होता है कि उसने उक्त रचना का गहन पाठ किया है। लेकिन व्याख्याकार (Exegator) को यह स्वतंत्रता होती है कि वह अपनी सुविधा या अपने मत के अनुरूप उस समझ की व्याख्या करें और प्रायः यह व्याख्या या भाष्य उसी भाषा में हो सकता है जिसमें मूल रचना लिखी गई है लेकिन सुजित मुखर्जी मानते हैं कि अनुवाद के लिए उस रचना का पाठ सर्वोच्च स्तर (Highest level) का होता है। उनके ही शब्दों में "Reading for translation may be placed at the highest level because not only must the translator interpret the text reasonably, he must also restructure his interpretation 'in another language' while striving to approximate the original structure. He can not subtract from the original and he adds only at great perial. He can only state- rather re-state in another language and he certainly can not explain his own statement intermittently as on exegate can and often does. Therefore the translation reading has to be of the highest order."

(Mukharji Sujit; Translation as Discovery and other Essays, New Delhi, Allied Publishers Pvt.Ltd; 1981, PP. 140-141)

उपर्युक्त अंश में सुजित मुखर्जी यह स्पष्ट करते हैं कि अनुवादक से अपेक्षाएं क्या हैं और उसके द्वारा किस प्रकार विशेषतः साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के सन्दर्भ में अपनी व्याख्या को तर्क संगत ढंग से जहां तक संभव हो मूल संरचना के अनुरूप प्रस्तुत करना होता है लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सुजित मुखर्जी अनुवादक को इतनी छूट तो देते हैं किवह दूसरी भाषा में मूल के कथन को व्यक्त या पुनर्कथन करें किन्तु उसे अपनी व्याख्या करने का अधिकार उस तरह नहीं है जिस प्रकार भाष्यकार को होता है। इस अर्थ में अनुवादक का पाठ सबसे ऊँचे स्तर का होता है।

साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अनुवाद पाठक को प्रशिक्षित करने का सबसे अच्छा माध्यम है खासकर तब जब भारत में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक भाषाओं में दक्षता रखता है।

सुजित मुखर्जी के विचारों का विश्लेषण करें तो एक बात थोड़ी अटपटी लग सकती है कि जहां एक ओर वे अनुवाद को Discovery, Recovery या New writing कहते हैं वहीं दूसरी ओर वे अनुवादक को विशेष स्वतंत्रता देने के भी पक्ष में नहीं है। यह समझना कठिन है कि बिना स्वतंत्रता दिए अनुवादक किस प्रकार एक 'नई रचना' का सृजन कर सकता है और अनुवाद किस प्रकार Recovery या Discovery हो सकता है। उपर्युक्त उद्धृत अंश में तो अनुवादक की सीमाएं व्यक्त की गई हैं, अपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख 'Translation as New writing' में भी वे अपनी उस बात को दुहराते हैं Even a wholly good international translation of a modern Indian work in to another Indian Language is not free from unnecessary liberties with the original-that is when the translator is indeed working from the original text. (I bid, PP. 79-80)

संभवत सुजित मुखर्जी भी यह जानते हैं कि उनके इस कथन में कहीं कोई असंगति तो नहीं इसीलिए वे उसी निबन्ध (New writing) में यह स्पष्ट करना नहीं भूलते कि 'That translation is New writing need not justify new writing being a form of scorreptious translation' (P. 80)। (अनुवाद नई रचना है इसे साबित करने के लिए अनुवाद लुकी छुपी या गुप्त अनुवाद के रूप में सामने आए, यह सही नही है। सुजित मुखर्जी अनुवाद के विभिन्न आयामों और संभावित पक्षों पर विचार करते हैं इसीलिए वे अनुवाद को testimony या साक्ष्य कहते हैं तो उसे मिथ्या

साक्ष्य (translation as perjury) भी मानते हैं। वे उसे देशभक्ति भी मानते हैं। (Translation as Patriotism)। इस प्रकार वे अनुवाद को नवलेखन, अनुसंधान या खोज, साक्ष्य, मिथ्या साक्ष्य, देशभक्ति आदि अनेक रूपों में देखते हैं यह अत्यन्त रोचक है कि सुजित मुखर्जी अनुवाद को अत्यन्त व्यापक फलक पर देखते हैं और उसकी विभिन्न भूमिकाओं को रेखांकित करते हैं।

अपने निबन्ध 'Translation as testimony' में सुजित मुखर्जी वाल्टर बेंयामिन द्वारा उठाई गई उस बहस को फिर सामने लाते हैं जिसमें वे यह कहते हैं कि अनुवादउनके लिए नहीं किया जाता जो मूलभाषा को समझ सकते हों (The task of Translator)। लेकिन सुजित मुखर्जी यह भी कहते हैं कि अनुवाद की 'सत्यता' की परीक्षा तभी हो सकती हैं जब वह मूल को समझ सके। (I bid P. 86)। अनुवाद एक तरफ से साक्ष्य है और दूसरी ओर वह मिथ्या साक्ष्य (Perjury) या झूठी शपथ है। अपने निबंध 'Translation as Perjury' में रवीन्द्रनाथ टैगोर के द्वारा अपनी कृति 'गीतांजलि' के अनुवाद के माध्यम से वे बताते हैं कि रवीन्द्रनाथ के अनुवाद 'Falsification' नहीं Perjury हैं। इसे वे स्पष्ट करते हैं कि 'The act of knowingly making a false statement on a matter material to the issue in question.'। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ के अंग्रेजी अुनवाद एक मिथ्या शपथ हैं किन्तु वे मूल की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अपने निबंध 'Translation as Patriotism' में वे अनुवाद के प्रकाशंन को देशभक्तिपूर्ण कार्य मानते हैं।

आधुनिक भारतीय अनुवाद सिद्धान्तकारों में सुजित मुखर्जी के सैद्धांतिक विवेचन का महत्त्व तो है ही उनके व्यावहारिक अनुवाद भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

11.4.3 गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक का अनुवाद सिद्धान्त

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक तुलनात्मक साहित्य, आलोचना, अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में अपने उल्लेखनीय योगदान के लिए तो जानी ही जाती है। एक अनुवादक के रूप में उनका योगदान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गायत्री चक्रबर्ती स्पीवॉक के अनुवाद का क्षेत्र जहाँ एक ओर दरीदा के फ्रेंच से अंग्रेजी में किए अनुवाद को स्पर्श करता है। वहीं दूसरी ओर वह महाश्वेता देवी की रचनाओं के बांग्ला से अंग्रेजी अनुवाद तक व्याप्त है। उत्तर आधुनिकता के एक महत्त्वपूर्ण चिन्तक दरीदा की पुस्तक De la grammatologie का अंग्रेजी अनुवाद of Grammatology के नाम से करके उसकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखी जिसमें अनुवाद चिन्तक के रूप में उनकी पहचान हुई। उनकी महत्वपूर्ण रचनाओं में शामिल हैं - Essays In other Worlds: Essays in cultural Politics, The Post Colonialist (1990) [(Ed. Sarah Harshyam) (Spivak's dilogues)], Death of a disciple, of Grammatology, A critique of Post Colonial Reason: To ward a History of Vanishing Present आदि।

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक के अध्ययन क्षेत्र में स्त्री एवं दलित-विमर्श, अनुवाद की राजनीति, उत्तर आधुनिकता आदि शामिल हैं। इनके बहुचर्चित निबन्धों में Can subolturn speak, Translation as Culture, Politics of Translation Destablizing Theory, Contemporary Feminist Debate, Bonding in difference तथा Feminism and Critical Theory का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

अनुवाद की दृष्टि से Politics of Translation गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक की अनुवाद सम्बन्धी अवधारणाओं को समझने के लिए बहुत उपयोगी है। अब यह अलग से रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं है कि अनुवादक की लैंगिक स्थिति (Gender) का अनुवाद के स्वरूप पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है, अनुवाद कोई भोलेपन का कार्य (Innosent Act) नहीं है इसकी सुनिश्चित राजनीति और रणनीति होती है विशेष रूप से औपनिवेशिक काल के अनुवाद के विषय में हम कह सकते हैं। इसी प्रकार 'Translation as a culture' निबन्ध भी गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक के प्रतिनिधि निबन्धों में शामिल किया जा सकता है जिसमें उनके अनुवाद चिन्तन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष सामने आता है।

अनुवाद की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करते हुए स्पीवॉक कहती हैं कि यदि हम अंग्रेजी शब्द Translation के शाब्दिक अर्थ पर विचार करें तो यह पता चला हैं कि यह लैटिन शब्द trasferre के Past Participle से बनता है जिसका अर्थ है अन्तरण (Transfer) यह वास्तव में हो चुका है न कि भविष्य का कार्य है जो बिना हमारे ज्ञान विशेषतः

हमारे नियंत्रण के बिना यह होगा - "The word comes from a Latin, Past Participle (of transferre=kto transfer) It is a done deal, precisely not a future anterior, something that will have happened without our knowledge, particularly without our control, the subject coming in to being: (Translating culture, included in 'In Translation Ed. Paul ST Pierre, Pratull C. Kar, Pencraft International, Delhi 2005, P. 239) यही नहीं वे अनुवाद को आवश्यक किन्तु असंभव कार्य मानती हैं - In Every Possible sense, translation is necessary but impossible.

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक मानती हैं कि अनुवाद एक पाठ है तथा पाठक के रूप में अनुवादक की भूमिका को वे रेखांकित करती है। Transalation as Reading तथा Reading As Translation की बात करते हुए वे RAT (Reader as Translation) की बात करती है। - Translation is the most intimate act of Reading. I surrender to the text when I translate. इसी बात को आगे ले जाते हुए वे महाश्वेता देवी की रचना 'स्तनदायिनी' के उनके द्वारा किए अनुवाद 'Breast Giver' तथा एक अन्य अनुवाद 'Wet Nurse' की स्वयं तुलना करते हुए वे कहती हैं कि Wet Nurse में महाश्वेता देवी की रचना का मूल आशय छूट गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में इस बात को रेखांकित करती हैं कि Translator must surrender to the text. She must solicit the text to show the limits of its language because that rhetorical aspect will point at the silence of the absolute fraying of language that the text wards off, in its special manner.

(Politics of Translation, included in 'The Translation Studies Reader Ed. Lawrence Venuti, 2000, Routledge, condon, P. 400) टोनीमारीसन के उपन्यास 'The Beloved' के माध्यम से वे अनुवाद को एक प्रकार से उत्तर औपनिवेशिक गोपनीय पाठ बताते हुए अनुवाद की राजनीति को उजागर करती हैं (I have tried to limn the Politics of a certain kind of clandestine post-colonial reading, using the master mark to put together history)

इस व्यापक अर्थ में जहां एक ओर वे पाठ के प्रतिपूर्ण निष्ठा की बात का समर्थन करती है वहीं दूसरी ओर उसमें अन्तर्निहित अर्थसंभावनाओं को इतिहास, स्त्री एवं दलित दृष्टि के प्ररिप्रेक्ष्य में उजागर करना वे अनुवादक का कार्य मानती हैं। इस अर्थ में यह एक सांस्कृतिक अनुवाद (Cultural Translation) है।

यद्यपि 'अनुवाद की राजनीति' के पीछे भी 'राजनीति' करने वाले लोगों और गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक और लैंगिक स्थिति (Gendered Position) की कुछ बातों से असहमति भी व्यक्त की गई है किन्तु व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह प्रतीत होता है कि गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक का आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन ही नहीं विश्व के फलक पर अनुवाद चिन्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। अमेरिका में रहने और वहां अध्ययन करने के बावजूद भारतीय चिन्तकों में उन्हें शामिल करने के कारण वही है जो ए.के. रामानुजन के सन्दर्भ में कहे जा सकते हैं। ये दोनों भारतीय मूल के विचारक तों हैं ही भारतीय रचनाशीलता के अनुवाद से इनका गहरा सरोकार है।

11.4.4 हरीश त्रिवेदी का अनुवाद सिद्धांत

आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन में प्रो. हरीश त्रिवेदी का नाम महत्त्वपूर्ण है। एक महत्त्वपूर्ण अनुवादक, साहित्यालोचक तथा सिद्धान्तकार के रूप में हरीश त्रिवेदी ने उल्लेखनीय कार्य किया हैं दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे प्रो. त्रिवेदी ने समकालीन भारतीय अनुवाद के विमर्श को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं उत्तर औपनिवेशिक अनुवाद पर इनका विवेचन अत्यन्त मूल्यवान है। शिकागो विश्वविद्यालय तथा लन्दन विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर रह चुके प्रोफेसर हरीश त्रिवेदी का अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण अवदान व्यावहारिक अनुवादक तथा सिद्धान्तकार दोनों ही स्तरों पर है। इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं - Colonial Translations: English Literature and India (1993, Calcutta, (Now Kolkata), 1995, Manchester) सह सम्पादक Literature and Nation: Britain and India 1800-1900 (London 2000), Post Colonial Translation: Theory and Practice (with Susan Bassnett, Routledge, London, 2000), Interogating Post-Colonialism: Theory, Text and context (with M. Mukharjee, Indin Institute of Advanced Study, Shimla, 1996)। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों की कृतियों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है जिनमें प्रमुख हैं - Premchand: His life and times (Delhi 1982, rpt 1991) तथा प्रकाशनाधीन शेखर : एक जीवनी (अज्ञेय कृत उपन्यास) का अंग्रेजी अनुवाद।

हरीश त्रिवेदी का अध्ययन फलक उत्तर औपनिवेशिक अनुवाद; अनुवाद की वर्तमान प्रकृति और स्थिति, सांस्कृतिक अनुवाद तथा संस्कृति का अनुवाद, तुलनात्मक साहित्य तथा अनुवाद के बदलते रिश्ते आदि तक विस्तृत है।

अनुवाद अध्ययन और तुलनात्मक साहित्य के आपसी रिश्ते और उसमें बदलाव को वे इस रूप में देखते हैं जब 1990 में सूसन बैसनेट (Susan Bassnet) तथा एन्द्रेलेफेवेयर (Andrelefever) ने अपनी पुस्तक 'Trnslation, History and Culture' में 'The Cultural Turn in Translation Studies' नामक एक अध्याय लिखा तो अनुवाद अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव आया। लगभग इसी समय अनुवाद अध्ययन को उसी प्रकार की मुक्ति एक अन्य अनुशासन तुलनात्मक साहित्य से मिली। जिसके अधीन वह एक सहायक अंग के रूप में जाना जाता था। 'It was about the same time that translation studies achieved a similar liberation from subservience to another discipline of which it was for long considered a subsidiary and merely instrumental part, comparative literature, (Paul St-Pierre Prafull C. Kar (eds). In Translation : Reflections Refractions, Transformations, 2005, Pencraft International, Delhi P. 254, article entitled translating culture vs cultural Translation) हरीश त्रिवेदी विस्तार से बताते हैं कि किस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन एक अनुशासन के रूप में संकट ग्रस्त हो चुका है। यहां हम याद कर सकते हैं गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक की रचना 'Death of a Displine' को जिसमें तुलनात्मक साहित्य की स्थिति को समझा जा सकता है।

होमीभाभा (Homi Bhabha) की पुस्तक 'The Location of Culture (1994)' के एक अध्याय 'Cultural Translation' पर टिप्पणी करते हुए हरीश त्रिवेदी कहते हैं कि भाभा सलमान रश्दी को सांस्कृतिक अनुवाद का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण मानते हैं जबकि अनूदित व्यक्ति बनने से पहले वे मूल व्यक्तित्त्व के स्वामी थे। भाभा के मत को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि सांस्कृतिक अनुवाद से भाभा का तात्पर्य दो भाषाओं की साहित्यिक कृतियों एवं संस्कृतियों के अनुवाद से इसका संबंध नहीं है अपितु उनका (भाभा) अभिप्राय मानव के स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया और दशा से है।

हरीश त्रिवेदी अनुवाद शब्द के बहुत ढीले ढाले अर्थ में प्रयोग के विरुद्ध हैं। झुम्पा लहरी के उदाहरण से सांस्कृतिक अनुवाद के गलत ढंग से इस्तेमाल का उल्लेख करते हैं झुम्पा लहरी कहती हैं कि 'And whether write as an American or an Indian, about things American or Indian or otherwise, one thing remains constant: I translate, Therefore I am' (वही, पृ. 258)। जो लेखिका बांग्ला के विषय में कहती है कि मेरी बचपन की भाषा को मैं नहीं समझ सकती वह भारत का अनुवाद कैसे कर सकती है। कम से कम यहां सांस्कृतिक अनुवाद के इस्तेमाल को जायज नहीं ठहराया जा सकता है। (वही, पृ. 258)

हरीश त्रिवेदी अपने विश्लेषण में भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य विशेषतः हिन्दी साहित्य, को भी शामिल करते हैं। हरिवंशराय बच्चन की रचना 'मधुशाला'का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि एन्द्रेलेफेवेयर के शब्दों में वह पुनर्लेखन (rewriting) है जबकि सुजित मुखर्जी की परिभाषा के अनुरूप वह नवलेखन (New writing) है (Post Colonial Translatin: Theory and Practice, Eds. Susan Bassnett, Harish Trivedi, 2000, Routledge, London, Introduction, P. 7) इसी प्रकार तुलसीदास के उदाहरण से वे कहते हैं कि तुलसीदास जन्मतः ब्राह्मण थे किन्तु उनकी रचना 'रामचरितमानस' संस्कृत में न लिखी जाकर देशी भाषा की रचना है। यह अनुवाद के विनियोगीकरण (Appropriation) का अच्छा उदाहरण है। (वही पृ. 10)।

साहित्यिक अनुवाद के विरोध में लगातार बनाए जा रहे वातावरण के प्रति सावधान करते हुए हरीश त्रिवेदी कहते हैं यह एक अत्यन्त घातक स्थिति होगी क्यों कि , 'If Literary translation is allowed to wither away in the age of cultural translation, we shall sooner than later end up with a wholly translated, monolingual, monocultural, monolithic world,'' (In translation, P. 259)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरीश त्रिवेदी एक सजग अनुवाद चिन्तक के रूप में हमारे सामने आते हैं जो सैद्धांतिक आधार को एक परिप्रेक्ष्य देते हैं तथा काल, देश एवं परिस्थितियों के अनुरूप सैद्धांतिकी पर विचार करते हैं चाहे वह औपनिवेशिक काल हो या उत्तर औपनिवेशिक काल। अनुवाद को विउपनिवेशीकरण (Decolonization) के एक

उपकरण के रूप में किस प्रकार उपयोग में लाया जा सकता है इसका प्रबल समर्थन रणनीति (अनुवाद की रणनीति) एवं फलितार्थ दोनों ही स्तरों पर हरीश त्रिवेदी के यहां मौजूद है।

11.4.5 तेजस्विनी निरंजना का अनुवाद सिद्धान्त

समकालीन भारतीय अनुवाद चिन्तन में तेजस्विनी निरंजना का उल्लेख अपरिहार्य है। तेजस्विनी निरंजना अनुवाद को भाषिक कार्य (Linguistic Exercise) से बहुत आगे लेजाकर एक व्यापक राजनीतिक-सांस्कृतिक कार्य के रूप में परिभाषित करती हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय चेतना के आलोक में अनुवाद को एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हुए वे अनुवाद की राजनीति और औपनिवेशिक शासनकाल में अंग्रेजी के विकास तथा अंग्रेजी शासनकाल में पाश्चात्य विचार को और अनुवादकों द्वारा किए और कराए गए अनुवाद कार्यों का सम्यक विवेचन-विश्लेषण तथा जनता, जातियों और भाषाओं के मध्य अनुवाद को अवस्थित मानने के महत्त्व को रेखांकित करती है।

इनकी अत्यन्त चर्चित कृतियां है - Siting Translatin (History, Post Colonialism and the Colonial Context) तेजस्विनी निरंजना ने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि ग्रहण की तथा हैदराबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की प्रोफेसर हैं तेजस्विनी निरंजना का अध्ययन क्षेत्र टॉमस मान, वाल्टर बेंयामिन तथा दरीदा के विचारों के सम्यक विवेचन से लेकर ए.के. रामानुजन के लेखन और अनुवाद कार्यों की समीक्षा तक व्याप्त है। इसकी व्यापक परिधि में औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक विवेचन को हम केन्द्रीय बिन्दु के रूप में देख सकते हैं।

अपने अत्यन्त चर्चित एवं विचारोत्तेजक लेख 'Translation Colonialism and Rise of English' में तेजस्विनी निरंजना औपनिवेशिक काल में हुए अनुवादों की राजनीति का उद्घाटन करती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि चाहे हरीश त्रिवेदी हों या तेजस्विनी निरंजना इन लोगों की तर्क पद्धतियों का विकास औपनिवेशिक शासन के विषय में एडवर्ड सईद की पुस्तक orientalism के प्रकाशन के बाद होता है। बल्कि कहना ज्यादा संगत होगा कि सईद के विचारों का विस्तार इनके अनुवाद चिन्तन में मिलता है। किन्तु इस दिशा में इनके शोधपूर्ण अध्ययन के महत्त्व को यह कहकर कम करने का कोई प्रयास यहां अभीष्ट नहीं है।

तेजस्विनी निरंजना विस्तारपूर्वक यह बताती हैं कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासनकाल में अनुवाद को औपनिवेशिक शासन के एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया गया। भारत में अनुवाद कार्यों के आरम्भ की पृष्ठभूमि यह है कि एडिनबर्ग (Edinbirgh) विश्वविद्यालय से जुड़े एक विद्वान मैकोंकी (Maconochie) की ब्रिटिश राज से इस प्रार्थना के बाद हुआ कि प्राचीन हिन्दू कृतियों को यथावश्यक अनुसंधान, संग्रह तथा अनुवाद के माध्यम से लाया जाय (1783 में पुनः 1788 में)। इसके फलस्वरूप विलियम जोंस जब 1783 में भारत आए तो अनुवाद के विषय में उनका मत था कि 'Translation would serve' to domesticate the orient and there by turn it into a province of European Learning. इसी प्रकार विलियम जोंस के अनुवादों की भूमिकाओं आदि के माध्यम से वे अंग्रेजी एजेण्डे को सामने लाती है। उन्होंने जोंस के अनुवादों के तीन उद्देश्य बताए (a) Need for translation by European, since the natives are unreliable interpreter of their own laws and culture (b) the desire to be a law-giver, to give the Indians their 'own' laws and (c) the desire to 'purify' Indian culture and speak on its behalf. असल में मैकाले का Minutes on Education (1835), जेम्समिल की History of British India तथा विलियम जोंस के अनुवाद एक ही औपनिवेशिक उद्देश्य से निर्मित हैं। (Baker, mona (Ed.), Translation Studies, 2009, Routledge, US, Canada, PP. 162-164)

निरंजना स्पष्ट रूप से कहती हैं कि My Study of Translation does not make any claim to solve the dilemmas of translators. It does not propose yet another way of theorizing translation to enable a more fool proof 'method' of 'narrowing the gap' between culture, it seeks rather to thik through this gap (siting Translation, P.9)

अनुवाद में जिस cultural turn की बात की जाती है उसे हम तेजस्विनी जिरंजना के अनुवाद चिन्तन में देख सकते हैं।

तेजस्विनी निरंजना टॉमस मान तथा बेंजामिन और दरीदा के हवाले से अनुवाद सिद्धान्तों को सुलझाने का उद्यम करती हैं। 'Translation as disruption' नामक निबन्ध (जो कि Siting Translatin में संकलित है) में तेजस्विनी निरंजना

उत्तर औपनिवेशिक अनुवादक के कार्यों को रेखांकित करते हुए कहती हैं, "The post Colonial translator must be wary of essentialist anti colonial narratives, infact, sheehe must attempt to deconstruct them to show their complicity with the master-narrative of imperialism. This is a crucial task, specially at a time when the myths of nationalism-secularism, tradition, nation hood, citizenship-are invoked to suppress hetero geneity in a decolonizing country like India." (siting translation P. 167)

तेजस्विनी निरंजना वाल्टर बेंयामिन और दरीदा के अनुवाद संबंधी मतों का तुलनात्मक अध्ययन भी करती है बल्कि यह कहना ज्यादा संगत होगा कि वे दरीदा के बेंयामिन संबंधी अनुवाद विषयक अध्ययन का आलोचनात्मक विवेचन करती है। इस क्रम में वे अनुवाद, इतिहास, अन्तर पाठीयता (Inter textuality) आदि को बेंयामिन, डी-मान तथा दरीदा के विचारों के आलोक में प्रस्तुत करती हैं बेंयामिन के निबन्ध 'The Task of Translator' की दरीदा की व्याख्या को स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं "For, derrida, allowing to Banjamin's connection between the translation of a work and its After life, the translation essay circulates among life, seed and survival, since to live on, survive) would seem to be 'essentially' related to translate. Derrida Does not seem to use the term genealogy in the sense that Nietzsche or Foucault would." (siting Translation P. 147)

तेजस्विनी निरंजना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजी शासन द्वारा कराए गए अनुवाद कार्यों की राजनीति का तथ्य एवं प्रमाण सहित विश्लेषण करना रहा है। वास्तव में यह औपनिवेशिक शासन को सुगम बनाने के साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार करना था। वे तो यहां तक मानती हैं - "Their only salvation, the missionaries would then claim, lay in conversion to the more evolved religion of the west." (Translation Studies, Ed. Mono Baker, Routledge, Newyork 2009, P. 169)। इस विचार से सहमत होना कठिन है पर यह एक व्याख्या तो है ही। इस प्रकार तेजस्विनी निरंजना ने अनुवाद के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष को रेखांकित किया।

11.5 अन्य अनुवाद सिद्धान्तकार एवं उनका अनुवाद चिन्तन

आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन एवं अुनवाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध है कुछ अनुवादकों ने बहुत विस्तार से तो अनुवाद पर विचार नहीं किया है किन्तु अनुवाद की प्रक्रिया और उसके अनुभव के आलोक में अनुवाद की भूमिकाओं और कुछ लेखों के माध्यम से उनके चिन्तन को समझा जा सकता है। पूर्वोक्त चयनित विचारक ही प्रतिनिधि विचारक हैं ऐसा कहना तो उचित नहीं होगा किन्तु एक इकाई में न तो सभी के विचारों का समावेश हो सकता है नहीं वह अभीष्ट है। हर चयन का एक तर्क और आधार होता है तथा उसकी सीमा भी। पूर्वोक्त चयन को भी इसी अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए। इसलिए इस खण्ड में जिन अनुवादकों-विचारकों पर विचार किया जाएगा उन्हें कमतर मानना उचित नहीं होगा। इन अनुवादकों विचारकों के भी सैद्धांतिक मत कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन लेखकों-विचारकों अनुवादकों में गणेश देवी, के. अयप्पा पाणिक्कर, डॉ. नगेन्द्र, दिलीप चित्रे, उमाशंकर जोशी, भीष्म साहनी, 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सक्रिय आलोचक-अनुवाद चिन्तक के रूप में प्रमुख नाम हैं। इससे पहले अर्थात् 20वीं शताब्दी के आरम्भ में रामचन्द्र शुक्ल, हरिवंशराय बच्चन, महावीर प्रसार दिवेद्वी, प्रेमचन्द्र और उससे भी पहले अर्थात् 19वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, राजा लक्ष्मण सिंह, आदि का नामोल्लेख आवश्यक है।

डॉ. नगेन्द्र ने विश्व साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद किया विपुल मात्रा में साहित्यिक-सांस्कृतिक महत्त्व की कृतियों का अनुवाद कराया तथा अनुवाद के सैद्धांतिक पक्षों का विवेचन भी किया। अरस्तू के 'काव्य शास्त्र', क्रोचे के सौन्दर्यशास्त्र आदि के अनुवाद के साथ-साथ उन्होंने पाश्चात्य काव्यशास्त्र, साहित्य के समाजशास्त्र, लोंजाइनस के उदात्त सिद्धान्त आदि को हिन्दी पाठकों के समक्ष लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रेमचन्द उर्दू से हिन्दी में आए। यह बात सभी जानते हैं उन्होंने अपनी आरंभिक रचनाएं उर्दू में लिखी और बाद में स्वयं उसका हिन्दी अनुवाद किया। 'बाजार-ए-हुस्न' का सेवासदन नाम से हिन्दी में अनुवाद ही कहा जाएगा। यद्यपि उसे हम सृजनात्मक और मौलिक कृति ही मानते हैं पर वह मूलतः उर्दू में ही सोची गई (Conceived) कृति मानी जाएगी।

प्रेमचन्द्र ने अनुवाद के विषय में लिखा भी है। भीष्म साहनी ने अंग्रेजी में अनुवाद के सन्दर्भ में दो लेख लिखे हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने विश्वप्रपंच की भूमिका विस्तार से लिखी है। 'विश्वप्रपंच' हेकेल की पुस्तक 'Riddle of Universe' का हिन्दी में अनुवाद है इस पुस्तक के अनुवाद के अलावा उन्होंने एडविन की कृति 'Light of Asia' का बुद्धचरित नाम से अनुवाद किया। 'Pleasure of Imagination' नामक लेख का 'कल्पना का आनन्द तथा 'Idea of a University' का 'साहित्य' नाम से अनुवाद उन्होंने किया था। बांग्ला उपन्यासकार राखलदास वंद्योपाध्याय की रचना 'शशांक' का उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया।

हरिवंशराय बच्चन ने शेक्सपीयर के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। फिटजराल्ड की रचना 'Rubiayat', (खैयाम कृत) का अनुकूलन या Appropriation मानी जाने वाली रचना 'मधुशाला' की लोकप्रियता से सभी परिचित हैं। हरीश त्रिवेदी और सूसन बैसनेट मानते हैं कि इसे एन्द्रलेफेवेयर के Rewriting या भारतीय सन्दर्भ में सुजित मुखर्जी की New writing ही कहा जा सकता है। यदि इसे हम किसी भी रूप में अनुवाद माने तो। (Preface-Introduction: of colonies, cannibals and Varnaculers, Post Colonial Translation: Theory and Pratice; eds. Bassnett; S. & Trivedi, H., London, Routledge, 2000, P. 8)

रघुवीर सहाय ने भी शेक्सपीयर के नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया। उन्होंने इस प्रकार के अनुवाद को हिन्दी को समृद्ध करने के लिए जरूरी माना। दिलीप चित्रे ने मराठी से अंग्रेजी में बहुत महत्त्वपूर्ण अनुवाद किए तथा उनकी भूमिकाएं लिखी जिनसे अनुवाद के स्वरूप, प्रकृति और उसकी बारीकियों पर प्रकाश पड़ता है। अनुवाद के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए दिलीप चित्रे कहते हैं - 'एक स्वतंत्र कवि होने के बावजूद मैं एक ऐसी उत्तर आधुनिक दुनिया में रहता हूं जो अनुवाद के द्वारा रूपांतरित है। एक लेखक के रूप में मेरी यह नियति है। मुझे स्वयं तथा भारत और यूरोप के बीच एक सेतु के रूप में बनाए रखना है अथवा मैं एक खण्डित व्यक्ति बनकर रह जाऊंगा।' (Singh, A.K., (Ed.) Translation: Its Theory and Practice, New Delhi, Creative Book, 1996, P. 9)

के. अयप्पा पाणिक्कर ने भारतीय अनुवाद परम्परा के महत्त्व को रेखांकित किया पाणिक्कर भारतीय साहित्यिक अनुवाद के परिदृश्य की अनुवाद में प्रामाणिकता की चिन्ता को निराधार मानते हैं। मायको वास्की की कविताओं के अनुवाद के अलावा एलियट की रचना 'Waste Land', जीवनानन्द दास की रचनाओं के अनुवाद उन्होंने ही किए हैं। उनका मानना हैं कि पद्धति अनुवाद की जाने वाली कृति के स्वरूप पर निर्भर करता है। कंभन, तुलसीदास, कृतिवास रामायण, और अध्यात्म रामायण आदि के माध्यम से वे बताते हैं कि मध्यकाल में रचनाकारों ने अनुवाद या पुनर्कथन करते हुए भी मूल रचना की शुद्धता या प्रामाणिकता की चर्चा नहीं की। 'The Anxiety of Authenticity: Reflections on Literary Translation' नामक निबन्ध में वे विस्तार से बताते हैं कि शुद्धता या प्रामाणिकता की चिन्ता समकालीन समस्या है।

गणेश नारायण देवी (G.N. Devy) अनुवाद पर भी बात करते हैं और अनुवाद की राजनीति पर भी। भारतीय अनुवाद परम्परा को भी रेखांकित करते हैं। 'After Amnesia' नामक पुस्तक में जहां वे 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' के अंग्रेजी अनुवाद और पश्चिम द्वारा उसके उत्साहपूर्वक अभिग्रहण (Reception) को भारतीय जनता के अतीत के साथ 'स्मृतिलोप' (Amnesia) के दुष्यन्त के रूपक के साथ जोड़ते हैं और बताते हैं कि पश्चिम को यह भारतीय मानस का रूपक बहुत उपयुक्त लगा इसीलिए उसने शूद्रक आदि के यथार्थवादी साहित्य को अनुवाद के लिए नहीं चुना। वहीं दूसरी ओर वे अनुवाद के भारतीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उसे मूल के रूप में ग्रहण करने का प्रस्ताव करते हैं 'Translation as original' नामक निबन्ध में (यह निबन्ध अन्यत्र 'Post Colonial Translation: Theory and Practice' Eds. Bassnett, S. & Trivedi, H., Routledge, 2000 में Translation and Literary History-An Indian view के रूप में प्रकाशित) वे अनुवाद के एक महत्त्वपूर्ण सत्तामूलक प्रश्न को उठाते हैं अधिकांश साहित्यों का जन्म अनुवाद से हुआ है इसलिए साहित्यिक इतिहास के लिए यह उपयोगी है कि वह साहित्यिक अनुवाद के सिद्धान्त का सहारा ले। यही नहीं वे यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं कि अनुवादों को अमौलिक (Unoriginal) समझा जाता है इसलिए इसके सौन्दर्यशास्त्र पर कभी चर्चा नहीं की गई। साहित्यिक इतिहास में अनूदित रचनाओं को कहां रखा जाय

स्रोतभाषा में या लक्ष्यभाषा में यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न वे उठाते हैं कि मूलभाषा की साहित्य परम्परा में वे शामिल की जाय या लक्ष्यभाषा के साहित्यिक इतिहासों या फिर उनकी स्वतंत्र और अलग परम्परा बन सकती है? (of Many Heroes, The G.N. Devy Reader, orient Black swan, Hydradad, 2009, PP. 163-64)

ध्यान देने की बात यह है कि इसी तरह का प्रश्न इटामर इवेन जोहर भी अपने सुप्रसिद्ध निबन्ध 'The Position of Translated Literature within the Literary Polysystem' (1978) में उठाया था। जब उन्होंने कहा था कि 'अनूदित साहित्य, साहित्यिक बहुव्यवस्था में केन्द्रीय स्थिति में है।' लेकिन गणेश देवी अनूदित कृतियों को लेकर अनिश्चय के कारण अनुवाद को होने वाली क्षति पर भी बात करते हैं वे कहते हैं - 'This Ontological uncertainty which haunts translation has rendered translation study a haphazard activity which devotes too much energy to discussing the problems to the original meaning and the meaning of the altered structure' (G.N. Devy, Reader, P. 164)

उमाशंकर जोशी गुजराती के महत्त्वपूर्ण कवि आलोचक होने के साथ-साथ अंग्रेजी में निष्जात थे। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित तथा साहित्य अकादमी के अध्यक्ष रह चुके उमाशंकर जोशी कविता के अनुवाद की समस्याओं को अपने एक निबन्ध 'Problem of Translating Poety' (मूल गुजराती में 1957 में प्रकाशित) में कविता के अनुवादक से इस अपेक्षा को अनुचित मानते हैं कि मूल रचनाकार की कवि-प्रतिभा को वह सामने ला पाएगा अपितु उससे उनकी इतनी ही अपेक्षा है कि वह मूलपाठ के यथासंभव निकट होने का प्रयास करें जितना ही मूल कृति की विशेषता और गुणवत्ता बनाए रखने में वह समर्थ होगा उतना ही वह सफल कहा जाएगा। (Translation: Its Theory and Pcatice, Ed. A.K. Singh, P. 79)

रवीन्द्रनाथ टैगोर यद्यपि यह जानते थे कि उनके अनुवाद मूल से भिन्न हैं इसके बावजूद उन्होंने अपनी रचनाओं का बांग्ला से अंग्रेजी में अनुवाद किया। न केवल 'गीतांजलि' का अपितु परवर्ती रचनाओं का भी अंतिम दिनों में तो उन्होंने अपनी रचनाओं को अंग्रेजी अनुवाद के रूप में न कहकर मूल अंग्रेजी कृति के रूप में प्रस्तुत किया। कहने का भाव यह है कि टैगोर ने स्वयं अनुवाद भी किए और अनुवाद पर अपने विचार भी व्यक्त किए।

संक्षेप में आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तन और सिद्धांतकारों का परिचय हमने प्राप्त करने का प्रयास किया है।

11.6 सारांश

आधुनिक भारतीय अनुवाद चिन्तकों की एक लम्बी सूची हो सकती है। इस विस्तृत सूची में से कुछ प्रमुख अनुवाद चिन्तकों पर विचार करें तो प्रस्तुत इकाई में चयनित ए.के. रामानुजन, सुजित मुखर्जी, गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक, तेजस्विनी निरंजना तथा हरीश त्रिवेदी के सिद्धांतो का अनुवाद अध्ययन के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। रामानुजन ने जहाँ तमिल और अंग्रेजी अनुवाद के व्यावहारिक कार्यों से अनुवाद को समृद्ध किया वहीं अनुवाद के विषय में उनकी सैद्धांतिक प्रस्तावनाएं अनुवाद को समझने में बड़ी सहायक है। गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक ने अनुवाद की राजनीति तथा स्त्री विमर्श और अनुवाद तथा Reader as Translator जैसी स्थापनाओं के द्वारा अनुवाद के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को तो सामने रखा ही अनुवाद कार्य के सांस्कृतिक विश्लेषण को भी प्रस्तुत किया। सुजित मुखर्जी अनुवाद को अनेक कोणों से देखते हैं इसीलिए उनके यहां अनुवाद Discovery भी है और Recovery भी। इसी तरह वे अनवुाद को New Writing या नव लेखन के रूप में भी परिभाषित करते हैं तेजस्विनी निरंजना अपने महत्वपूर्ण अध्ययन में औपनिवेशिक काल में अनुवाद कार्यों के निहित उद्देश्यों को सामने लाती हैं तथा ब्रिटिश राज के राजनीतिक एजेण्डे को उद्घाटित करती हैं वहीं हरीश त्रिवेदी उत्तर औपनिवेशिक अनुवाद कार्यों की राजनीति को सामने लाते हैं और सांस्कृतिक अनुवाद और संस्कृति के अनुवाद के मुद्दों को भी उठाते हैं।

गणेश देवी अनुवाद के सौन्दर्य शास्त्र की आवश्यकता पर बल देते हैं तथा साहित्यिक इतिहास में अनूदित कृतियों की क्या जगह हो यह मौलिक प्रश्न उठाते हैं अयप्पा पाणिक्कर भारतीय परिप्रेक्ष्य के हवाले से यह बताते हैं कि अनुवाद में मूलपाठ के सन्दर्भ में प्रामाणिकता का प्रश्न मध्यकालीन विमर्श का हिस्सा नहीं था। उमाशंकर जोशी कविता के अनुवाद से मूल काव्य रचना जैसी प्रतिभा को अनुचित मानते हैं। दिलीप चित्रे समकालीन उत्तर आधुनिक परिवेश में

अनुवाद के बिना एक प्रकार के खण्डित व्यक्तित्व की स्थिति स्वीकार करते हैं। प्रेमचन्द, रघुवीर सहाय, डॉ. नगेन्द्र, भीष्म साहनी, हरिवंशराय बच्चन आदि के विचार अनुवाद अध्ययन को समझने में बहुत उपयोगी हैं।

11.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. भारतीय अनुवाद चिन्तन के वर्तमान परिदृश्य पर विचार करते हुए ए.के रामानुजम के अनुवाद संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।
2. गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक के अनुवाद सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिए।
3. औपनिवेशिक काल में हुए अनुवाद कार्यों का उल्लेख करते हुए तेजस्विनी निरंजना के अनुवाद सम्बन्धी सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए।
4. सांस्कृतिक अनुवाद से आप क्या समझते हैं? हरीश त्रिवेदी के अनुवाद अध्ययन में योगदान की चर्चा कीजिए।
5. क्या आप मानते हैं कि अनुवाद एक 'नवलेखन' (New Writing) है? सुजित मुखर्जी के अनुवाद सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   (1) गणेश देवी का अनुवाद चिन्तन (2) अयप्पा पाणिक्कर का अनुवाद विवेचन।

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Mukharji, S., 1981, *Translation as Discovery and Other Essays*, New Delhi, Allied Publisher
2. *G.N. Devy Reader*, 2009, Hyderabad, Orient Black Swan
3. Pierre, Paul St. & Car, Prafull C. (eds.), 2005 *In Translation, Reflections, Refractions, Transformations*, Delhi, Pen craft Intenational.
4. Singh, Avadhesh Kumar (ed.), 1996, *Translation : Its Theory and Practice*, New Delhi, Creative Books.
5. Niranjana, Tejaswani, 1995, *Siting Translation*, Hyderabad, Orient Long Man.
6. Baker, Mona (ed.), 2009, *Translation Studies*, London, Routledge, (Vol. IV)
7. Said, Edward W., 1978, *Orientalism*, Penguin Books.
8. Bassnett, S. & Trivedi, H. (eds.), 1999, *Post Colonial Translation: Theory and Pratice*, London, Routledge.
9. Bassnett, S. 2010, *Translation Studies*, London, Routledge.
10. Venuti, Lawrence (ed.), 2000, *The Translation Studies Reader*, London, Routledge.
11. Baker, Mona & Saldanha, G. (eds.), 1998, *Routledge Encyclopedia of Translation Studies*, Routledge.